ॐ

गायत्रीमन्त्रार्थभास्करः ।

भाषाटीकासमेतः ।



गायत्रीमन्त्रार्थभास्करः ।

स एव च
मिश्रोपाह्व-पण्डितगदाधरप्रसादशर्म्म-
कृत-भाषाटीकया विभूषितः ।

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासः
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रण-यन्त्रालयाध्यक्षः
मुम्बईस्थः ।

शकाब्दाः १८५३, संवत् १९८८.

मुद्रक और प्रकाशक-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
मालिक-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बंबई.

गायत्री ।

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवळच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-

र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ।



गायत्रीं वरदाभयांकुशकशां शुभ्रं कपाळं गदां

शंखं चक्रमथारविंदयुगळं हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥ १ ॥

अथ गायत्रीमन्त्रार्थभास्करः प्रारभ्यते ।

गायत्रीसगुणध्यानम् ।

संस्कृतम् ।

(१) मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखै-
स्त्रीक्षणैर्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णा-
त्मिकाम्॥गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशां शूलंकपालं
गुणं शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगुलं हस्तैर्वहन्ती-
म्भजे ॥ १ ॥

भाषा ।

मुक्ता विद्रुम (मूंगा) सुवर्ण, नीलम और स्फटिकके छविवाले तीन तीन नेत्रवाले [पांच] मुखोंसे युक्त, चन्द्रमासे सुशोभित रत्नमुकुटवाली, चौबीस अर्थ और वर्ण स्वरूप वाली, वरद अभय अंकुश कोडा शूल मुण्ड पाश शंख चक्र और दो कमलोंको (दश) हाथोंसे धारण करती हुई श्रीगायत्री देवीको मैं भजता हूं ॥ १ ॥

---

(१) देवीभागवते । स्क० १२ । अ० ३ । श्लो० १० ।

संस्कृतम् ।

(१) श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा ।
श्वेतैर्विलेपनैः पुष्पैरलङ्कारैश्च भूषिता ॥ १ ॥
आदित्यमण्डलस्था च ब्रह्मलोकगता थवा ।
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा ॥ २ ॥

भाषा ।

गायत्री देवी, श्वेतवर्ण, रेशमी वस्त्रको धारण किये हुए, श्वेत चन्दन और श्वेत पुष्पोंकी माला और सब भूषणोंसे भूषित, तथा श्वेत रुद्राक्षकी माला धारण किये हुए, पद्मासनसे स्थित सूर्यमण्डल अथवा ब्रह्मलोकमें विराजमान हैं ॥ १ ॥ २ ॥

---

(१) बृहद्योगियाज्ञवल्क्यसंहिता अ० ४ श्लो० २७ । २८

निर्गुणध्यानम्।

संस्कृतम्।

(१) हृदयकमलमध्ये दीपवद्वेदसारं प्रणवमयमतर्क्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम्॥ हरिगुरुशिवयोगं सर्वभूतस्थमेकं सकृदपि मनसा वै ध्यायते यः स मुक्तः॥ १ ॥

भाषा।

हृदयकमलमें शुद्ध दीपशिखाके ज्योतिके समान सर्ववेदोंका सारभूत, प्रवणरूप, तर्कनारहित योगियोंके ध्यानद्वारा जानेन योग्य विष्णु, गुरु, शिवस्वरूप, सर्वभूतोंमें चैतन्यरूपसे विराजमान, अद्वितीय परब्रह्मरूप गायत्रीका मनसे जो पुरुष एक वार भी ध्यान करता है वह जीवन्मुक्त है॥ १॥

---

(१) गायत्रीहृदये।

अधिकः पाठः ।

८७ पृष्ठे स्कान्दीयसूतसंहितोक्तमन्त्रव्याख्या विद्यारण्यस्वामिकृता ।

अन्तर्यामितया स्थितो यो देवः स नोऽस्माकं धियो बुद्धिर्धर्मज्ञानादिषु प्रचोदयात्प्रेरयेत्। "चुद्-प्रेरणे" इत्येतस्माल्लेटयाडागमः। तस्य देवस्य द्योतमानस्य स्वयंप्रकाशचिद्रूपस्य सर्वप्राणि-हृदयाम्बुजमध्यवर्त्यन्तःकरणादिसाक्षित्वेन वर्त-मानस्य सवितुः प्रेरकस्य शिवस्वरूपभूतं तत्सृष्टि-स्थितिसंहारकारणतया प्रसिद्धं वरेण्यं सर्वप्राणि-सेव्यं भर्गो भर्जनात्पापस्य भर्जकं सत्यज्ञानादिल-क्षणं स्वमायाशक्तिवशेन शिवरुद्रादिसंज्ञापन्नं सूर्य-मण्डलमध्ये तत्प्रेरकत्वेनावस्थितं वाङ्मनसातीत-मीदृग्विधं यत्परं ब्रह्म तद्वयं धीमहि ध्यायेम। तदे-वाहमस्मीति जानीयामित्यर्थः। "ध्यै चिन्तायाम्" इत्यस्माल्लिङि छान्दसं रूपम्, तदुक्तमाचार्यैः "ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातुर्निष्पन्नं धीमहीत्यतः" इति।

संस्कृतभूमिका।

संस्कृतम्।

विद्वज्जनेषु सर्ववेदसारभूतब्रह्मात्मैक्यबोधकगायत्रीमन्त्रो विदितोऽस्ति। तस्य सर्वकर्मादावनुष्ठानं तदकरणे प्रायश्चित्तं चान्यस्मिन्ननधिकारं शास्त्रेषु निर्दिष्टम्। पुनरपि यत्सर्वश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणप्रभृतीनां संसारदुःखनिवृत्तिपूर्वकनित्यकैवल्यानन्दावाप्तिप्रयोजनमस्ति तत्केवलैतन्मन्त्रेण मलविक्षेपावरणनिरसनपूर्वकेण सिद्धं भवतीत्युच्यते। "यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मीति" भगवद्गीतोक्तवचनात् सर्वयज्ञेषु निर्धनपुरुषसुसाध्यत्वाद्धिंसादिरहितत्वाच्च यज्ञस्याधिकत्वम्; पुनः "सर्वेषां जपसूक्तानां गायत्री परमो जपः" इतिपराशरोक्तवचनात्सर्वजपसूक्तेषु साक्षाद्ब्रह्मोपासनात्वाद्गायत्रीजपस्य परत्वम्। पुनः 'गायन्तं त्रायते यस्मात्पातकादुपपातकादिति' व्यासवच-

नात् सर्वोत्कृष्टगायत्रीजपेन सर्वमहापातकादिमलाभिहननं भवति । तथा "असावादित्यो ब्रह्म" "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" 'योऽसावादित्ये पुरुषः सोसावहम्' इत्यादिश्रुतिभ्यस्तन्मन्त्रार्थरूपस्य सूर्यमण्डलहृत्पुण्डरीकान्तर्गतपरमेश्वरस्य चिन्तनात्मकोपासनया विक्षेपनिरसनं भवति । तथा च तत्स्वरूपलक्ष्यभूतब्रह्मात्मैक्यज्ञानेनावरणक्षयो भवति । एवं त्रीणि मुक्तिप्रतिबन्धकानि नश्यन्ति । ततोऽर्थधर्म्मादिपुरुषार्थचतुष्टयसारभूतसालोक्यादिचतुष्कसारतमं परमानन्दलक्षणं सायुज्यकैवल्यपदं भवति । यदविद्याबीजविलसितसुषुप्त्यवस्थायाम्-अज्ञानकार्यविलयाद् दुःखनिवृत्त्यात्मकं विषयानन्दोत्कृष्टं सकलजनानुभूतसुखमास्ति । तस्मादपि कैवल्यपदे अज्ञाननिवृत्तिपूर्वकानन्दावाप्तिरूपं ह्यत्यन्तोत्कृष्टतमं सुखम्भवति परञ्च यदेव विद्यया करोति

श्रद्धया तदेव वीर्य्यवत्तरम्भवति ॥" (छान्दोग्य०) "तज्जपस्तदर्थभावनम्।" (योगसू०) "वेदस्याध्ययनं सर्वं धर्म्मशास्त्रस्य चापि यत्। अज्ञातार्थं तु तत्सर्वं तुषाणां खण्डनं यथा" (व्यासः) "स वेदपाठमात्रेण सन्तुष्टो यो भवेद् द्विजः। पाठमात्रावसायी तु पङ्के गौरिव सीदति ॥" योऽधीत्य विधिवद्विप्रो न वेदार्थं विचारयेत्। स सान्वयः शूद्रसमः पात्रतां न प्रपद्यते" (मनुः) "योऽधीतेऽहन्यहन्येतां गायत्रीं वेदमातरम्। विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमाङ्गतिम्" (कूर्मपु०) "जपस्याभ्यन्तरे व्याख्या स्मर्त्तव्या मनसा द्विजैः। स्मरणात्सर्वपापानि प्रणश्यन्ति न संशयः ॥ विश्वासभक्तिजननं मन्त्रैर्यज्ज्ञानमुत्तमम्। तस्मादर्थं विजानीयाद्यत्नेन जपकृद् द्विजः" (भारद्वाजः) इत्यादिवाक्येभ्यस्तदुपासनायास्तदर्थज्ञानसाध्यत्वात् तदर्थज्ञानस्यावश्यकत्वम्। अतस्तदाधिका-

रिजनोपकारार्थं मतान्तराक्षेपनिरसनपूर्वकमल-
भ्यानेकश्रुति–स्मृति--पुराण,--भाष्यादिग्रन्थेभ्यः
सारभूतं प्रधानार्थं समुद्धृत्य यथास्थानं संयोज्य
गायत्रीमन्त्रार्थभास्करः संकलितः। तस्य बहुमित्र-
जनसम्मतानुमोदनाय भाषाटीकापि कारिता ।



भाषाभूमिका ।

विद्वज्जनोंको गायत्रीमन्त्र विदित ही है जो चारों वेदोंका सार है और जो ब्रह्म और जीवात्माकी एकताका बोधक है । शास्त्रोंमें ऐसा लेख है कि वेदविहित सब कर्मोंके आरम्भमें गायत्री मन्त्रका अनुष्ठान होता है ऐसा न करनेसे प्रायश्चित्त (पाप) होता है और अन्य सत्कर्म करनेका अधिकार नहीं रहता है । पुनः समस्त श्रुति स्मृति, इतिहास, पुराणादिका लक्ष्य यही है कि संसार-दुःखकी निवृत्ति और नित्य कैवल्यानन्दकी प्राप्ति हो, यह केवल गायत्रीमन्त्र द्वारा ही फलीभूत हो सकता है क्योंकि गायत्री मन्त्रका आश्रय लेनेसे ही मल, विक्षेप और आवरणका नाश होता है (यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि) यज्ञोंमें मैं जपयज्ञ हूँ, भगवान् श्रीकृष्णके इस वाक्यके अनुसार सब यज्ञोंमें हिंसा तथा द्रव्यव्ययके अभावके कारण जपयज्ञका ही महत्त्व अधिक है, पुनः " सर्वेषां जपसूक्तानां गायत्री परमो जपः " सब प्रकारके जपोंमें गायत्रीजप श्रेष्ठ है, पराशरमुनिके इस वचनके अनुसार साक्षात् ब्रह्मकी उपासना होनेके कारण गायत्री मन्त्रका जप सब जपोंमें श्रेष्ठ है । पुनः "गायन्तं त्रायते यस्मात्पातकादुपपातकात् " इस महर्षि व्यासजीके वचनके अनुसार जो गायत्री मन्त्रका गान (जप) करता है उसकी रक्षा यह मन्त्र पातक (महापातक) और उपपात-

कसे करता है । इस वचनके अनुसार सर्वश्रेष्ठ गायत्री-जप द्वारा सब प्रकारके महापातकादि मलोंका नाश होताहै । तथा " असावादित्यो ब्रह्म" (यह सूर्य जो आकाशमण्डलमें उदय होता है और अपने प्रकाशसे अन्धकारका नाश करता है वही ब्रह्म है) " सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" (सूर्य चर और अचर दोनों प्रकारकी सृष्टिका आत्मा है) " योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् " (जो पुरुष सूर्यमें है वही मैं हूँ) इत्यादि श्रुतियों द्वारा यह प्रतिपादित होता है कि गायत्रीमन्त्रार्थ रूप जो तेजोमय पुरुष सूर्यमण्डल तथा हमारे हृदयकमलमें विराजमान है उसका चिन्तन करनेसे विक्षेपका नाश होता है । गायत्रीमन्त्रमें भी यही उपासना प्रतिपाद्य है । तथा उस तेजोमय पुरुषके लक्ष्यार्थ-स्वरूप अर्थात् ब्रह्मात्मैक्यका जो ज्ञान होता है उससे आवरणका क्षय होता है । इस प्रकार तीनों मोक्षके प्रतिबन्धकोंका नाश होता है, इन प्रतिबन्धकोंके क्षय होनेसे पुरुषार्थ चतुष्टयमें सारभूत मोक्षकी और मुक्ति चतुष्टयमें अतिश्रेष्ठ परमानन्दरूप सायुज्य कैवल्यपदकी प्राप्ति होती है । सब लोगोंका यह साधारण अनुभव है कि अविद्याबीजविलसित सुषुप्ति अवस्थायें अज्ञानके कार्योंके लोप होनेसे सर्व दुःख निवृत्ति पूर्वक विषयानन्दसे उत्कृष्ट सुख होता है उससे भी अधिक कैवल्यपद प्राप्त होने पर अज्ञाननिवृत्तिपूर्वक अत्यन्त उत्कृष्ट अक्षय सुख होता है । निश्चय करके जो सत्कर्म अर्थज्ञान तथा श्रद्धापूर्वक किया जाता है वह अधिकतर बलिष्ठ होता है (छान्दोग्य) " उस

ॐकारका जप करना और उसके अर्थका चिन्तन करना" (योगसूत्र) "वेद तथा धर्मशास्त्रोंका अध्ययन जो विना अर्थके किया जाता है वह ऐसा है जैसे भूसी कूटना(व्यास) जो द्विज वेदके पाठमात्रसे सन्तुष्ट रहता है उसने केवल पाठमात्रका ही कष्ट उठाया है और वह उसी प्रकार खेद को प्राप्त होता है जैसे कीचडमें फँसी हुई गऊ" (मनु) "जो विप्र विधिपूर्वक वेदका अध्ययन करता है परन्तु वेदके अर्थको नहीं विचारता वह वंशसहित शूद्रके तुल्य है और सुपात्रताको नहीं प्राप्त होता है" (मनु) "जो ब्रह्मचारी प्रतिदिन वेदोंका कारण इस गायत्रीके अर्थका जानकर जप करता है वह परम गतिको प्राप्त होता है" (कूर्मपुराण) "द्विजोंको उचित है कि जपके समय मनमें मन्त्रार्थ चिन्तन करते रहैं क्योंकि अर्थके स्मरणसे सब पाप नष्ट होजाते हैं। मन्त्रका जो यथार्थ ज्ञान है वही विश्वास और भक्तिको उत्पन्न करनेवाला है, इस लिये जप करनेवाले द्विजको यत्नपूर्वक अर्थ जानना उचित है" (भारद्वाज) इत्यादि वाक्योंसे स्पष्ट है कि गायत्री मंत्रके अर्थका ज्ञान भी आवश्यक है क्यों कि मंत्रके अर्थज्ञान विना उपासना साध्य नहीं है। इस कारण अधिकारी पुरुषोंके उपकारके लिये "गायत्री-मन्त्रार्थ भास्कर" नामक ग्रन्थकी रचना हुई है। इस ग्रन्थमें भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके मतोंका उल्लेख न करके केवल अनेक अलभ्य श्रुति, स्मृति, पुराण, भाष्यादि-ग्रन्थोंका सारभूत प्रधान अर्थ लेकर यथोचित स्थानमें रखादिया है। इति।

विषयानुक्रमणिका ।





गायत्रीमन्त्रार्थभास्करः ।

भाषाटीकासहितः ।

मङ्गलाचरणम् ।

संस्कृतम् ।

(१) ध्यात्वा ब्रह्म प्रथममतनु प्राणमूले नदन्तं दृष्ट्वा चान्तः प्रणवमुखरं व्याहृतीः सम्यगुक्त्वा ॥ यत्तद्वेदे तदिति सवितुर्ब्रह्मणोक्तं वरेण्यं तद्भर्गाख्यं किमपि परमं धाम गर्भं प्रपद्ये ॥ १ ॥

भाषा ।

प्रथम विभु ब्रह्मको ध्यानकर, भीतर हृदयवायुके मूलस्थानमें अव्यक्त शब्दको करते हुए, आदिमें (ॐ) तब व्याहृति (भूर्भुवः स्वः) को भले प्रकारसे कह (तत्) यह और (सवितुर्वरेण्यं) ऐसा वेदमें ब्रह्माजीसे कथित को देखकर (भर्गो) भर्ग नामक कोई अनिर्वचनीय तेजके शरणमें मैं प्राप्त होता हूं ॥ १ ॥

---

(१) साम्बपञ्चाशिकायाम् ।

संस्कृतम् ।

(१) यन्मण्डलं व्याधिविनाशदक्षं यदृग्यजुःसामसु सम्प्रगीतम् ॥ प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ २ ॥

यन्मण्डलं ज्ञानघनं त्वगम्यं त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम् ॥ समस्ततेजोमयदिव्यरूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ३ ॥

भाषा ।

जो सूर्यमण्डल व्याधियोंके विनाश करनेमें समर्थ है, जो ऋक्, यजु और सामवेदमें सम्यक् प्रकारसे गान किया गया है, जिससे भर्भुवः स्वः प्रकाशित होता है(तत्सवितुर्वरेण्यम्) वह सूर्यदेवका वर्णनीय तेजवाला मंडल मुझे पवित्र करै ॥ २ ॥

जो मण्डल निबिड़ ज्ञानरूप, अगम्य, त्रैलोक्यपूज्य, त्रिगुणात्मस्वरूप और समस्त तेजोमय दिव्य स्वरूप है, वह सूर्य देवका वर्णनीय तेजवाला मण्डल मुझे पवित्र करै ॥ ३ ॥

---

(१) महाभारते ।

गायत्रीमहत्त्वम् ।

संस्कृतम् ।

(१) गायत्री छन्दसामहम् ॥ १ ॥

(२) गायत्री छन्दसां मातेति ॥२॥

(३) नास्ति गंगासमं तीर्थं न देवः केशवात्परः।
गायत्र्यास्तु परं जप्यं न भूतं न भविष्यति॥ ३॥

भूर्भुवः स्वरिति चैव चतुर्विंशाक्षरास्तथा।
गायत्री चतुरो वेदा ओङ्कारः सर्वमेव तु ॥ ४ ॥

भाषा ।

छन्दोंमें गायत्री छन्द मैं हूं ॥ १ ॥

गायत्री वेदोंका आदि कारण है ॥ २ ॥

गंगाके समान कोई तीर्थ नहीं है; केशव भगवान्से परे कोई देवता नहीं है; गायत्रीसे परे कोई जप न हुआ है न होगा ॥ ३ ॥

भूर्भुवः स्वः यह तीन महाव्याहृतियां और चौबीस अक्षरवाली गायत्री चारों वेद स्वरूप है और निस्संदेह ओंकार सर्वरूप है ॥ ४ ॥

---

(१) भगवद्गीता अध्याय १०।३५।

(२) महानारायणोपनिषदि १५।१।

(३) बृ० यो० याज्ञ० अ० १० । १०; २।७९; ४।१६।

संस्कृतम् ।

यथा मधु च पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद्रसात्पयः ।
एवं हि सर्ववेदानां गायत्री सारमुच्यते ॥ ५ ॥
(१) त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादम्पादमदूदुहत्।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः॥६॥
(२) अष्टादशसु विद्यासु मीमांसाऽतिगरीयसी।
ततोऽपि तर्कशास्त्राणि पुराणं तेभ्य एव च ॥ ७ ॥
ततोऽपि धर्मशास्त्राणि तेभ्यो गुर्वी श्रुतिर्द्विज ।
ततोऽप्युपनिषच्छ्रेष्ठा गायत्री च ततोऽधिका ॥
दुर्लभा सर्वमन्त्रेषु गायत्री प्रणवान्विता ॥ ८ ॥

भाषा ।

जैसे फूलोंका सार मधु, दूधका सार घृत, रसका सार दूध है इसी प्रकार सब वेदोंका सार गायत्री मंत्र कहा जाता है ॥ ५ ॥

परमेष्ठी प्रजापति (ब्रह्मा) ने तीन ऋचावाली गायत्रीके तीनों चरणोंको तीनों वेदोंसे सारभूत निकाले हैं ॥ ६ ॥

अठारहों विद्यामें मीमांसा अति श्रेष्ठ है तिससे भी न्यायशास्त्र और न्यायशास्त्रसे पुराण श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥

हे द्विज ! तिससे भी श्रेष्ठ धर्मशास्त्र है और उससे भी श्रेष्ठ वेद हैं वेदसे श्रेष्ठ उपनिषद् तिससे भी गायत्री मंत्र श्रेष्ठ है, प्रणवयुक्त यह गायत्री सर्व मंत्रोंमें दुर्लभ है ॥ ८ ॥

---

(१) मनु० अ० २। श्लो० ७७।
(२) बृ० सन्ध्याभा० ।

संस्कृतम् ।

(१) एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परन्तपः ।
सावित्र्यास्तु परन्नास्ति पावनं परमं स्मृतम् ॥ ९ ॥
पाठान्तरम्—(मौनात्सत्यं विशिष्यते)
(२) तदित्यृचःसमो नास्ति मंत्रो वेदचतुष्टये ।
सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च दानानि च तपांसि च ॥
समानि कलया प्राहुर्मुनयो न तदित्यृचः ॥ १० ॥
(३) सर्वेषां जपसूक्तानामृचाञ्च यजुषां तथा ।
साम्नां चैकाक्षरादीनां गायत्री परमो जपः ॥ ११ ॥

भाषा ।

एकाक्षर (ॐ) परब्रह्म है, प्राणायाम परमतप है, गायत्रीसे परे कोई मंत्र परमपवित्र नहीं है । तथा सत्य बोलना मौनसे श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

चारों वेदोंमें गायत्रीके समान कोई मन्त्र नहीं है । मुनिलोग कहते हैं, कि गायत्रीके एक कलाके समान सर्ववेद, सर्वयज्ञ, सर्वदान और सर्व तपस्याएं नहीं हैं ॥ १० ॥

सब जपसूक्तोंमें ऋग्यजुःसामवेदों और एकाक्षरादि मन्त्रोंमें गायत्री परम जप है ॥ ११ ॥

---

(१) मनु० अ०२। श्लो ० ८३। अत्रिस्मृ० अ०२।श्लो०११।

(२) विश्वामित्रः ।

(३) बृ० पाराशरस्मृ० अ० ४।श्लो०४।

संस्कृतम् ।

(१)साङ्गांश्चचतुरोवेदानधीत्यापिसवाङ्मयान्।
सावित्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः॥१२॥
(२)गायत्री चैव वेदाश्च ब्रह्मणा तोलिता पुरा।
वेदभ्यश्च सहस्रेभ्यो गायत्र्यतिगरीयसी ॥ १३ ॥
(३) सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना ।
ब्रह्मादयोऽपि संध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च।१४॥
(४) गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता ।
यया विनात्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा॥१५॥

भाषा ।

स्वर तथा अङ्ग सहित चारों वेद पढ़ने परभी जो गायत्री मन्त्रको नहीं जानता है, उसका परिश्रम निष्फल है ॥ १२ ॥

पूर्व कालमें ब्रह्माने गायत्री और वेदोंको तौला तो सहस्रों वेदोंसे भी गायत्रीका पल्ला भारी पाया ॥ १३ ॥

गायत्रीका आराधन सब वेदोंका साररूप है सन्ध्याकालमें ब्रह्मादिक भी तिसका ध्यान सहित जप करते हैं ॥ १४ ॥

सर्व वेदोंमें गायत्रीकी नित्य उपासना वर्णित है, जिसके विना सर्व प्रकारसे ब्राह्मणोंकी अधोगति होती है ॥ १५ ॥

---

(१) योगियाज्ञवल्क्य ०।

(२) बृ० पाराशर० । अ० ५ । श्लो०१६।

(३) देवीभागवते स्कं० ११। अ०१६। श्लो०।१५।

(४) देवीभागवते स्कन्ध १२। अ० ८। श्लो ९।

संस्कृतम् ।

(१) गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नु-
यात् ॥ १६ ॥

(२) गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पाव-
नम् । हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे॥१७॥

(३)किं वेदैः पठितैः सर्वैः सेतिहासपुराणकैः ।
साङ्गैः सावित्रहीनेन न विप्रत्वमवाप्नुयात् ॥१८॥

भाषा ।

केवल गायत्री मात्रकी उपासनासे द्विज मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

इस लोक तथा परलोकमें पवित्र करनेवाला गायत्रीसे परे कोई मंत्र नहीं है क्योंकि नरकरूप समुद्रमें गिरते हुएको यह गायत्री हाथ पकडकर बचाती है ॥ १७ ॥

अङ्गसहित सर्व वेद तथा इतिहास पुराणादिकोंके पढ़नेसे क्या हुआ जो गायत्रीमंत्रकी उपासनासे हीन है वह ब्राह्मणत्वको नहीं प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

---

(१) दे० भा० स्कं० १२। अ० ८ श्लो० ९०।
(२) शङ्खस्मृ० अ० १२ श्लो० २५।
(३) वृ० पराशर अ० ५।१४।

संस्कृतम् ।

(१) न ब्राह्मणो वेदपाठान्न शास्त्रपठनादपि । देव्यास्त्रिकालमभ्यासाद्ब्राह्मणः स्याद्द्विजोऽन्यथा ॥ १९ ॥

(२) गायत्र्यास्तु परन्नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् । महाव्याहृतिसंयुक्तां प्रणवेन च संजपेत् ॥ २० ॥

(३)गायत्रीं यः परित्यज्य चान्यमंत्रमुपासते । न साफल्यमवाप्नोति कल्पकोटिशतैरपि ॥ २१ ॥

भाषा ।

वेद और शास्त्रके पढ़नेसे भी ब्राह्मण नहीं हो सकता है त्रिकाल गायत्रीकी उपासनासे ब्राह्मण कहा जाता है अन्यथा द्विजही रहता है ॥ १९ ॥

गायत्रीकी उपासनासे परे पापकर्मोंके शोधनेके लिये कोई मंत्र नहीं है अतः प्रणव तथा महाव्याहृति सहित गायत्रीका जप करै ॥ २० ॥

गायत्रीको छोड़कर जो दूसरे मंत्रकी उपासना करता है वह शतकोटि कल्पतक भी सफलताको प्राप्त नहीं कर सकता है ॥ २१ ॥

---

(१) बृ० सन्ध्याभाष्ये ।

(२) सम्वर्त स्मृ० । श्लो० २१८।

(३) बृ० सन्ध्याभाष्ये ।

संस्कृतम् ।

एष एव मंत्रो द्विजत्वसंपादकोपनयनसंस्कारे उपदिश्यमानो गुरुमंत्र इत्युच्यते, सूर्यवंशीयाश्चन्द्रवंशीयाश्च सर्वे राजान इममेव मंत्रं शुचयो भत्वा नित्यं जपन्ति स्म। यथा महाभारते अनुशासनपर्वणि अ० १५० श्लो० ७८ युधिष्ठिरं प्रति भीष्मवाक्यम् । सोमादित्यान्वयाः सर्वे राघवाः कुरवस्तथा । पठन्ति शुचियो नित्यं सावित्रीं परमां गतिम् ॥ श्रीरामचन्द्रकर्तृकनित्यसन्ध्योपासनं (गायत्रीमंत्रजपः) तु वाल्मीकीये बहुषु स्थलेषूपवर्णितमिति विदितमेवास्ति ॥२२॥

भाषा

यही मंत्र द्विजत्व-संपादक-उपनयनसंस्कारमें उपदेश किया गया गुरुमंत्र कहा जाता है। इसी मंत्रको सूर्यवंशी तथा चंद्रवंशी राजन्यगण पवित्र होकर नित्य जपा करते थे जैसा कि (महाभारतके अनुशासन पर्वमें १५० अध्यायके ७८ वें श्लोकमें) युधिष्ठिरके प्रति भीष्मने कहा है, कि सूर्य और चन्द्रवंशके सब कोई तथा रघुवंशी कुरुवंशी (विशेष) पवित्र होकर नित्य परमगति--दायिनी सावित्रीको जपा करते हैं। श्रीरामचन्द्रजीका किया सन्ध्योपासन (गायत्रीमंत्रजप) वाल्मीकीय रामायणमें कई एक स्थलमें वर्णित है इति ॥ २२ ॥

संस्कृतम्

(१) नान्नतोयसमं दानं न चाहिंसापरं तपः ।
न सावित्रीसमं जप्यं न व्याहृतिसमं हुतम् ॥२३॥

भाषा ।

अन्न और जलके समान दान, अहिंसाके समान तप सावित्रीके समान जप और व्याहृतिसमान कोई आहुति नहीं है ॥ २३ ॥

गायत्रीब्रह्मैक्यम् ।

संस्कृतम् ।

(२) ब्रह्म गायत्रीति-ब्रह्म वै गायत्री ॥ १ ॥

(३) गायत्री परमात्मा ॥ २ ॥

(४) गायत्री परदेवतेति गदिता ब्रह्मैव चिद्रूपिणी ॥ ३ ॥

भाषा ।

ब्रह्म ही गायत्री है ॥ १ ॥

गायत्री परमात्मा है ॥ २ ॥

गायत्री सबसे परे देवता और चैतन्यरूपिणी ब्रह्म है ऐसा कहा गया है ॥ ३ ॥

---

(१) सूतसंहितायां यज्ञवैभवखण्डे (अ० ६ श्लो० ३० पृ० ३६९)
(२) शतपथब्राह्मणे।८।५।३।७।ऐतरेयब्रा० अ० २७। खं०५
(३) गायत्रीतत्त्वे । श्लो० ९ ।
(४) गायत्रीपुरश्चरणप० ।

संस्कृतम् ।

(१)अथो वदामि गायत्रीं तत्त्वरूपां त्रयीमयीम्॥
यया प्रकाश्यते ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ ४ ॥

(२) असावादित्यो ब्रह्म ॥ ५ ॥

(३) सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ६ ॥

(४) गायत्री वा इदं सर्वम् ॥ ७ ॥

(५) गायत्री वा इदं सर्वभूतं यदिदं किञ्च॥८॥

भाषा ।

तत्त्वरूपिणी त्रिवेदमयी गायत्रीको मैं कहता हूँ, जिससे सच्चिदानन्द लक्षण ब्रह्म प्रकाशित होता है, अर्थात् ब्रह्मका ज्ञान होता है ॥ ४ ॥

यह प्रत्यक्ष सूर्यदेव ब्रह्मरूप है ॥ ५ ॥
यह सूर्य भगवान् चर अचर सृष्टिका आत्मा है ॥ ६ ॥
यह सब सृष्टि गायत्रीरूप है ॥ ७ ॥
यह संसार जो कुछ है वह सब गायत्रीरूप है ॥ ८ ॥

---

(१) गायत्रीतत्त्वे श्लो० १ ।
(२) महावाक्योपनिषदि ।
(३) सूर्योपनिषदि ।
(४) नृसिंहपूर्वतापनीयोप ० ४।२।
(५) छान्दोग्योप० ३।१२।१।

संस्कृतम् ।

(१) न भिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह ।
सोऽहमस्मीत्युपासीत विधिना येनकेनचित् ॥ ९ ॥
(२)देवस्य सवितुस्तस्य धियो यो नः प्रचोदयात्।
भर्गो वरेण्यं तद्ब्रह्म धीमहीत्यथ उच्यते ॥ १० ॥
सप्रभं सत्यमानन्दं हृदये मण्डलेऽपि च ।
ध्यायञ्जपेत्तदित्येतन्निष्कामो मुच्यतेऽचिरात् ॥११॥
(स यश्चायं पुरुषो यश्चासावादित्येस एकः,इतिश्रुतेः)

भाषा ।

गायत्री और ब्रह्ममें भेद नहीं है, चाहे जिस किसी प्रकारसे हो (वह) मैं हूँ, यह उपासना करै ॥ ९ ॥

उस प्रकाशमान सविताका वर्णन करने योग्य तेज जो हमारी बुद्धिकी प्रेरणा करता है वह ब्रह्म है उसका मैं ध्यान करता हूँ ऐसा कथन है ॥ १० ॥

प्रकाशसहित सत्यानन्द स्वरूप ब्रह्मको हृदयमें वा सूर्यमण्डलमें ध्यान करता हुआ निष्काम गायत्रीका जप करै तो शीघ्र भवबन्धनसे छूट जाता है ॥ ११ ॥

(सर्व भूतोंके हृदयमें जो आत्मरूप पुरुष है और जो सूर्यमण्डलमें परमात्मरूप पुरुष है वे दोनों एकरूप हैं)

---

(१) व्यासः ।
(२) विश्वामित्रः ।

संस्कृतम् ।

(१) गायत्र्याख्यं ब्रह्म गायत्र्यनुगतं गायत्री-मुखेनोक्तम् ॥ १२ ॥

(२) गायत्री प्रत्यग्ब्रह्मैक्यबोधिका ॥ १३ ॥

(३)प्रणवव्याहृतिभ्याञ्च गायत्र्या त्रितयेन च ।
उपास्यं परमं ब्रह्म आत्मा यत्र प्रतिष्ठितः ॥ १४ ॥

(४) परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपददायिनी ॥
ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता ॥ १५ ॥

भाषा ।

गायत्री नामक ब्रह्म गायत्रीमें व्यापक गायत्री नामसे वर्णित है ॥ १२ ॥

गायत्री जीवात्मा और ब्रह्मकी एकताका बोधक है॥१३॥

प्रणव व्याहृति और गायत्री इन तीनोंद्वारा परब्रह्म उपासना करने योग्य है जिस ब्रह्ममें आत्मा स्थित है ॥ १४ ॥

ब्रह्मरूपा गायत्री मोक्षपद देनेवाली है और ब्रह्मतेजमयी शक्ति है वह गायत्री मन्त्रकी अधिष्ठात्री देवता है ॥ १५ ॥

---

(१) छान्दोग्य० शंकरभाष्ये प्र० ३ खं० १२मं० ५ ।

(२) शङ्करभाष्ये ।

(३) तारानाथकृतगा० व्या० पृ० २५।

(४) देवीभाग० स्कं० ९अ० १श्लोक ४२ ।

संस्कृतम् ।

(१)ओङ्कारस्तत्परंब्रह्म सावित्रीस्यात्तदक्षरम्१६
(२) गायत्री तु परं तत्त्वं गायत्री परमा
गतिः ॥ १७ ॥
(३) गायत्र्येवपरो विष्णुर्गायत्र्येव परः शिवः ॥
गायत्र्येव परो ब्रह्मा गायत्र्येव त्रयी यतः ॥ १८ ॥
(४)सर्वात्मना हि सा देवी सर्वभूतेषु संस्थिता॥
गायत्री मोक्षहेतुर्वै मोक्षस्थानमलक्षणम् ॥ १९ ॥

भाषा ।

ओङ्कार परब्रह्मरूप है और गायत्री भी नाश रहित ब्रह्म है ॥ १६ ॥

गायत्री परमतत्त्व और परम गति है ॥ १७ ॥

गायत्री ही दूसरा विष्णु, दूसरा शिव और दूसरा ब्रह्मा है क्योंकि गायत्री तीनों देवोंका स्वरूप है ॥ १८ ॥

वही गायत्री देवी सर्वात्मरूपसे सर्व भूतोंमें स्थित है और गायत्रीही मोक्षका कारण तथा अरूप मुक्तिका स्थान है ॥ १९ ॥

---

(१) कूर्मपुराणे उ० विभा० अ० १४। श्लो० ५५।
(२) बृहत्पाराशर सं० अ० ५। श्लो० ४।
(३) बृहत्सन्ध्याभाष्ये ।
(४) ऋषिशृङ्गः ।

कालभेदेन गायत्र्या नामानि ।

संस्कृतम् ।

(१)गायत्री नाम पूर्वाह्णे सावित्री मध्यमे दिने ॥
सरस्वती च सायाह्ने सैव सन्ध्या त्रिषु स्मृता॥१॥

भाषा ।

प्रातःकालमें गायत्री, मध्याह्नमें सावित्री तथा सायङ्कालमें सरस्वती नाम है वही गायत्री तीनों सन्ध्यामें वर्णित है ॥ १॥

गायत्रीनामार्थः ।

संस्कृतम् ।

(२) तद्यद्गयाꣳस्त्रायते तस्माद्गायत्री ॥ १ ॥
(३) गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मण इति ॥ २ ॥

भाषा ।

गायत्री जिस कारणसे प्राणोंकी रक्षा करती है तिस कारणसे उसका गायत्री नाम है ॥ १ ॥

गान और स्तुतिकर्ममें गायत्री नाम है ॥ २ ॥

---

(१) व्यासः ।

(२) बृहदारण्यक० ५ ।१४।४।

(३) निरुक्तौ नैघण्टुके काण्डे । १ अ० ३ पा० ३ ख० ।

संस्कृतम् ।

(१) प्रतिग्रहान्नदोषाच्च पातकादुपपातकात् ॥
गायत्री प्रोच्यते तस्माद्गायन्तं त्रायते यतः ॥ ३॥
(२) सवितृद्योतनात्सैव सावित्री परिकीर्तिता॥
जगतः प्रसवितृत्वात् वाग्रूपत्वात्सरस्वती ॥ ४ ॥
(३)गायञ्छिष्यान् यतस्त्रायेत्कायं प्राणांस्तथैव च।
ततः स्मृतेयं गायत्री सावित्रीयं ततो यतः ॥
प्रकाशनात्सा सवितुर्वाग्रूपत्वात्सरस्वती ॥ ५ ॥

भाषा ।

जिस कारणसे जप करनेवालेकी प्रतिग्रह, अन्नदोष पातक और उपपातकोंसे रक्षा करती है तिस कारणसे गायत्री कही जाती है ॥ ३ ॥

प्रकाशकरनेसे और जगत्के उत्पन्न करनेके कारण उसी गायत्रीका नाम सावित्री हुआ और वाणीरूप होनेसे सरस्वती हुआ ॥ ४ ॥

जिसकारण जप करनेवालेके शरीर और प्राणकी रक्षा करती है तिसकारण गायत्री नाम है, प्रकाश होनेसे सावित्री और वाग्रूप होनेसे सरस्वती नाम है ॥ ५ ॥

---

(१) व्यासः—याज्ञवल्क्यः ।

(२) व्यासः ।

(३) अग्निपुराणे अ० २१६ । श्लो० १–२ ।

संस्कृतम् ।

(१)प्राणा गया इति प्रोक्ता स्त्रायते तानथापि वा॥
(२) गयान् प्राणान् त्रायते सा गायत्री ॥६॥
(३) चतुर्विंशत्यक्षराणां सत्त्वेन गायत्रीछन्दस्कतयापीयं गायत्रीत्यधीयते ॥ ७ ॥

भाषा ।

प्राणका नाम गय है तिस प्राणकी रक्षा करनेके कारण गायत्री नाम हुआ ॥ जो 'गय' अर्थात्–प्राणोंकी रक्षा करती है वह गायत्री है ॥ ६ ॥

चौबीस अक्षरोंसे निर्मित होनेके कारण तथा गायत्री छन्द होनेके कारण गायत्री नाम है ॥ ७ ॥

वर्णाश्रमिणां तन्मन्त्रभेदमाह ।

संस्कृतम् ।

(४)ओङ्कारव्याहृतिपूर्वां गायत्रीं ब्राह्मणो जपेत।
त्रिष्टुभश्चैव राजन्यो जगतीं वैश्य एव च ॥ १॥

भाषा ।

ओंकार और तीनों व्याहृति सहित गायत्री मंत्रको ब्राह्मण जपै। त्रिष्टुप्छन्दवाला मंत्र क्षत्रिय और जगतीछन्दवाला मंत्र वैश्य जपै ॥ १ ॥

(१) भरद्वाजः ।
(२) एतरेयब्रा० ।
(३) तारानाथ गा० व्या० । पृ० १६ पं० ।
(४) अपरार्के शाखान्तरे मन्त्रनिरूपणखण्डे ।

संस्कृतम् ।

यद्वा सर्वेऽपि गायत्रीं तत्राद्यो ब्रह्मसंज्ञिताम् ।
विड् वैष्णवीं नृपो रौद्रीं सर्वे वा ब्रह्मसंज्ञिताम् ॥ २ ॥

भाषा ।

अथवा तीनों वर्ण गायत्रीछन्दवाला मंत्र जपैं । तिनमें आदिवर्ण ब्राह्मण ब्रह्मगायत्री जपै । वैश्य विष्णुगायत्री, क्षत्रिय रुद्रगायत्री अथवा तीनों वर्ण ब्रह्मगायत्री जपैं ॥ २ ॥

ब्रह्मचारिगृहस्थयोः—

संस्कृतम् ।

(१) ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ॥ १ ॥
(२) जपेत्प्रणवपूर्वाभिर्व्याहृतीभिः सदैव तु ।
तिसृभिर्भूःप्रभृतिभिर्गायत्रीं ब्रह्मरूपिणीम् ॥ २ ॥

भाषा ।

ओंकार पूर्वक तीनों अव्यय व्याहृतियों सहित त्रिपदा गायत्री ब्रह्ममुख जानने योग्य है ॥ १ ॥

प्रणव पूर्वक तीनों व्याहृतियों (भूः भुवः स्वः) सहित ब्रह्मरूपिणी गायत्रीको सदैव जपै ॥ २ ॥

---

(१) मनु० । अ० २ श्लो० ८१ ।

(२) लध्वाश्वलायन० । प्र० १ श्लो० ४५-४६ ।

संस्कृतम् ।

(१)ओङ्कारमादितः कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम् ।
ततोऽधीयीत सावित्रीमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः ॥ ३॥
(२)ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेत्येतदात्मायमुच्यते ।
गायत्र्यास्तत्पठित्वादौ जपकर्म समाचरेत् ॥४॥
(३)प्रणवव्याहृतियुतां गायत्रीं वै जपेत्ततः ।
(४)तत्रैकप्रणवा कार्या गृहस्थैर्जपकर्मणि ॥ ५॥

भाषा ।

श्रद्धायुक्त एकाग्र चित्तसे आदिमें ओंकार, तदनन्तर महाव्याहृति, तत्पश्चात् गायत्री (सावित्री) मन्त्रका जप करै ॥ ३ ॥

ॐ एकाक्षर ब्रह्म है और इसीको आत्मा कहते हैं इसीको गायत्रीके आदिमें कहकर जपै ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर प्रणव व्याहृति युक्त गायत्रीको जपै, जपकर्ममें एक प्रणव युक्त गायत्री गृहस्थको जप करना उचित है ॥ ५ ॥

---

(१) कूर्म पु० उ० भा० अ० १४ श्लो० ५२।
(२) शौनकः ।
(३) व्यासः ।
(४) वशिष्ठः ।

संस्कृतम् ।

(१) गृहस्थवत्तु जप्तव्या सदैव ब्रह्मचारिभिः॥ ६ ॥
(२) गृहस्थो ब्रह्मचारी च प्रणवाद्यामिमां जपेत् ।
अन्ते यः प्रणवङ्कुर्यान्नासौ वृद्धिमवाप्नुयात् ॥ ७॥
(३) ओङ्कारो व्याहृतीस्तिस्त्रः प्रथमं संप्रयोजयेत्।
ओङ्काराद्यास्त्रिरावृत्य वेदस्यारम्भणे तथा ॥ ८ ॥
प्रणवाद्या तु विज्ञेया जपे व्याहृतिभिः सह ।
प्रणवव्याहृतिभिः सार्द्धं स्वाहान्तं होमकर्मणि॥९॥

भाषा ।

ब्रह्मचारियोंको भी गृहस्थोंकी भांति गायत्री सदैव जपना चाहिये ॥ ६ ॥

गृहस्थ और ब्रह्मचारी प्रणवको आदिमें कहके गायत्री जपै जो अन्तमें प्रणवकी योजना करके जपते हैं वे वृद्धि-को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

ओंकार और तीनों व्याहृतियोंकी प्रथम योजना करै । तथा वेदके आरम्भमें ओंकारयुक्त गायत्री तीन वार जपै ॥ ८ ॥

जपमें प्रणवादि व्याहृतियों सहित गायत्री जानना चाहिये । होमकर्ममें स्वाहाके अन्ततक प्रणव और व्याहृति सहित जपना चाहिये ॥ ९ ॥

(१ स्मृतिचन्द्रिकायाम् ।

(२) यो० याज्ञ० अ० ४।२६।

(३) यो० याज्ञ० अ० ४।३८,३९,४०. ।

वानप्रस्थादीनाम्।

संस्कृतम्।

(१) ओङ्कारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च।
गायत्री प्रणवश्चान्ते जपो ह्येवमुदाहृतः॥ १॥

भाषा।

पहिले ओङ्कारका उच्चारण करके फिर भूर्भुवः स्वः अनन्तर त्रिपदा गायत्री और अन्तमें ओंकर सहित गायत्रीका जप कहा गया है॥ १॥

गायत्रीप्रणवयोगकरणे हेतुः।

संस्कृतम्।

(२) गायत्री प्रकृतिर्ज्ञेया ओङ्कारः पुरुषः स्मृतः।
ताभ्यामुभयसंयोगाज्जगत्सर्वं प्रवर्त्तते॥ १॥

भाषा।

गायत्रीको प्रकृति जानना चाहिये, ओंकार पुरुष कहा गया है, इन दोनोंके संयोगसे सब जगत् होता है॥ १॥

---

(१) बृ० यो० याज्ञ०।
(२) बृहद्योगियाज्ञव०। अ० ४।१७।

(अ) गायत्रीमन्त्रः ।

संस्कृतम् ।

(१)ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ओम् भूः । भुवः । स्वः । तत् । सवितुः । वरेण्यम् । भर्गः । देवस्य । धीमहि । धियः । यः । नः । प्रचोदयात् ॥ १ ॥

अन्वयः ।

सवितुः देवस्य यद्वरेण्यं भर्गः नः धियः प्रचोदयात् (प्रेरयति) तत् धीमहि । कीदृशं तत्, भूः भुवः स्वः । पुनः कीदृशम्, ओम् ॥ १ ॥

अथवा–सवितुः देवस्य यद्वरेण्यं भर्गः धीमहि, तत् नः धियः प्रचोदयात् (प्रेरयेत्) कीदृशं तत्, भूर्भुवः स्वः । पुनः कीदृशम्, ओम् ॥ २ ॥

(अ) मंत्रो मननात्(निरु० दै० ७ अ० ३ पा० ६ ख०)
मननात्तत्त्वरूपस्य मितदेवस्य तेजसः ।
त्रायते सर्वभरतस्तस्मान्मंत्र इतीरितः॥(कलार्णवतन्त्रे १७।१ आर्यसम्प्रदायप्रदर्शकगायत्रीभाष्ये पृ० २४)

(१) ऋ० वे० अष्ट० ३ अ० ४ व० १० मं० ३ अ० ५ सू० ६२ मन्त्र १०, शुक्लयजुर्वेद अ० ३। मं० २५ ।
कृष्णयजुर्वेद कां० १ अ० । प्र० २। अनु० ६।
सामवेद उत्त० अ० १३ ख० ४ अ० ६ अ० ३ सू० ९ ऋ० १।

यद्वा—यः (सविता)नः धियःप्रचोदयात्(प्रेरयति) तत्, तस्य सवितुः देवस्य वरेण्यं भर्गः धीमहि, तत्कीदृशम्—भूर्भुवः स्वः, पुनः कीदृशम्,ओम्॥३॥ इति(याज्ञवल्क्यभारद्वाजागस्त्यकृतभाष्यानुसारेण पदयोजना कृता)

प्रणवमहत्त्वम् ।

संस्कृतम् ।

(१) ओङ्कारस्तु परं ब्रह्म गायत्री स्यात्तदक्षरम्।
एवं मन्त्रो महायोगः साक्षात्सार उदाहृतः ॥ १॥
(२) अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरितीति च॥ २ ॥

भाषा ।

ओंकार परब्रह्म है और गायत्री उसका अक्षर है इसप्रकार यह मन्त्र महायोग और साक्षात् सार कहा गया है ॥ १ ॥

अकार उकार मकार और भूर्भुवः स्वः को ब्रह्माने तीनों वेदोंसे साररूप प्रकट किया है ॥ २ ॥

---

(१) औशनसस्मृतौ ३। ५२।

(२) मनु० । अ० २। ७६।

संस्कृतम् ।

(१)सारभूताश्च वेदानां गुह्योपनिषदः स्मृताः।
ताभ्यस्सारं तु गायत्री गायत्र्या व्याहृतित्रयम्॥३॥
व्यहृतिभ्यस्तथोङ्कारास्त्रिवृद्ब्रह्म स उच्यते ।
त्रिवृद्ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥४॥

ओङ्कारः परमं ब्रह्म सर्वमन्त्रेषु नायकः ।
प्रजापतेर्मुखोत्पन्नः तपःसिद्धस्य वै पुरा ॥ ५ ॥

भाषा ।

वेदोंका सार गुह्य उपनिषद् कहे गये हैं तिनका सार गायत्री, गायत्रीका सार तीनों व्याहृति हैं ॥ ३ ॥

तीनों व्याहृतियोंका सार ओंकार कहा गया है ओंकारको त्रिमात्र ब्रह्म कहते हैं, त्रिमात्र ब्रह्ममें जो मग्न रहता है वह परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

ओंकार परब्रह्म है और सब मन्त्रोंमें श्रेष्ठ है, आदिमें तपसे सिद्ध हुए ब्रह्माके मुखसे प्रकट हुआ है ॥ ५ ॥

---

(१) बृ० यो० याज्ञ० अ०४।७८-७९ । अ० २।२-३।

प्रणवस्य ब्रह्मबोधकत्वम् ।

संस्कृतम् ।

(१) ओमिति ब्रह्म ॥ १ ॥

स ओमित्येतदक्षरमपश्यद्द्विवर्णं चतुर्मात्रम् ।
सर्वव्यापि सर्वविभ्वयातयाम ब्रह्म ॥ २ ॥

(२) हंसप्रणवयोरभेद इति ॥ ३ ॥

(३ (प्रणवहंसः परब्रह्मेति ॥ ४ ॥

(४) परश्चापरश्च ब्रह्म यदोङ्कारः ॥ ५ ॥

(५) ओङ्कार एवेदꣳ सर्वम् ॥ ६ ॥

भाषा ।

ओंकार ब्रह्म है ॥ १ ॥

ब्रह्माने ओम् इस अक्षरको देखा जो दो वर्ण और चार मात्रावाला सर्वव्यापी नाशरहित ब्रह्म है ॥ २ ॥

हंस (परमात्मा) और प्रणव (ॐ) में भेद नहीं है॥३॥

प्रणव और हंस ये दोनों परब्रह्म हैं ॥ ४ ॥

ओंकार निर्गुण और सगुण ब्रह्म है ॥ ५ ॥

यह सर्व सृष्टि ओंकाररूप ही है ॥ ६ ॥

---

(१) तैत्तिरीयोप०।अ०१।८–गोपथब्राह्मण पूर्वभा०प्र०१ब्रा०१६

(२) पाशुपतब्रह्मोप०

(३) परब्रह्मोप०

(४) प्रश्न० ५।२

(५) छान्दो० २।२३। ३ ।

संस्कृतम् ।

(२)भूतम्भवद्भविष्यति सर्वमोङ्कार एव यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोंकारोऽधिमात्रम् ।ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वम् ॥ ७ ॥

(२) यदमूर्तं तत्सत्यं तद्ब्रह्म यद्ब्रह्म तज्ज्योतिर्यज्ज्योतिः स आदित्यः वा एव ओमित्येतदात्माऽप्यभवत् ॥ ८ ॥

(३) ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ॥ ९ ॥

भाषा ।

भूत, वर्त्तमान और भविष्य सब ओंकाररूप है । तथा जो कुछ तीनों कालसे परे हैं निश्चय करके सो भी ओंकार रूप है वह ओंकर यह आत्मा है-१ अध्यक्षर नाशरहित तथा अधिमात्रा यह सर्व सृष्टि ओंकाररूप है ॥ ७ ॥

जो रूपरहित है, वह सत्य है वही ब्रह्म है जो ब्रह्म है वह प्रकाशस्वरूप है, जो प्रकाशस्वरूप है वह सूर्य है, वही सूर्य्य ॐकार है वही आत्मा है ॥ ८ ॥

ॐतत्सत् यह ब्रह्मका तीन प्रकारका नाम कहा गया है९॥

---

(१) माण्डूक्य । श्रु० १;८;१

(२) मैत्र्युपनिषदि० ६।३ ।

(३) भगवद्गीतायाम् । अ० १७।२३ ।

संस्कृतम्।

(१) तस्य (ईश्वरस्य) वाचकः प्रणवः ॥१०॥

(२) त्रिमात्रार्द्धपरं ब्रह्म मात्राक्षरविवर्जितम्॥
अचिन्त्यमव्ययं सूक्ष्मं निष्कलं परमं पदम्॥ ११॥
वाच्यः स ईश्वरः प्रोक्तो वाचकः प्रणवः स्मृतः॥
वाचकेऽपि च विज्ञाते वाच्य एव प्रसीदति ॥१२॥

भाषा।

तिस ईश्वरका वाचक (बोधक) प्रणव है॥ १०॥

तीनमात्रासे परे जो अर्धमात्रा है वह परब्रह्मरूप है, जो मात्रा और अक्षरसे रहित, अचिन्त्य, अव्यय, सूक्ष्म, निष्कल (कलारहित) और परमपद है॥ ११॥

वाच्य ईश्वर है और वाचक प्रणव कहा गया है, वाचक (प्रणव) का विशेषज्ञान होनेपर वाच्य (ईश्वर) प्रसन्न होता है॥१२॥

प्रणवफलम्।

संस्कृतम्।

(३) ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ १॥

भाषा।

ॐ इस एकाक्षर ब्रह्मका जप और मेरा स्मरण करता हुआ जो शरीरको छोड़ता है वह परमपदको प्राप्त होता है॥ १॥

---

(१) पातंजलयोगसूत्राणि। १ पा० २७ सू०।

(२) बृ० यो० याज्ञ० अ० २। ४४।

(३) गीतायाम् ८।१३।

संस्कृतम् ।

(१) यदोङ्कारमकृत्वा किञ्चिदारभ्यते तद्व-ज्रीभवति । तस्माद्वज्रभयाद्भीतमोंकारं पूर्वमारभे-दिति ॥ २ ॥

भाषा ।

ओंकारका उच्चारण न करके जो कुछ (श्रौतादि) कार्य आरम्भ किया जाता है वह वज्रवत् होजाता है अर्थात् निष्फल होजाता है । तिसकारण वज्रके भयसे डर ॐकारके उच्चारण पूर्वक कार्यको आरम्भ करै ॥ २ ॥

प्रणवनामानि ।

संस्कृतम् ।

(२) ओंङ्कारं प्रणवञ्चैव सर्वव्यापिनमेव च । अनन्तं च तथा तारं शुक्लं वैद्युतमेव च ॥ हंस तुर्यं परब्रह्म इति नामानि जानत ॥ १ ॥

भाषा ।

ओंकार, प्रणव, सर्वव्यापी, अनन्त, तार, शुक्ल, वैद्युत' हंस, तुर्य, परब्रह्म इन ओङ्कार नामोंको जानो ॥ १ ॥

---

(१) छान्दोग्यपरि० ।

(२) बृ० यो०-याज्ञ० अ० । २।११६–११७ ।

पदार्थाः-ओ३म् ।

संस्कृतम् ।

(१) आप्लृधातुरवतिमप्येके रूपसामान्यादर्थसामान्यान्नेदीयस्तस्मादापेरोङ्कारः सर्वमाप्नोतीत्यर्थः ॥ १ ॥

(२) अव–रक्षाप्रकाशपालनहिंसावृद्ध्यादिषु अवति चतुर्दशभुवनानीत्योम् ॥ २ ॥

भाषा ।

आप्लृ व्याप्तौ अव रक्षणे इन दोनों धातुओंका रूप सामान्य कथन किया है इससे अर्थ समान्य है तिससे आप्लृ धातुसे ॐकार सर्वव्यापी है ॥ १ ॥

अव-धातु, रक्षा-प्रकाश-पालन हिंसा-वृद्धि आदि अर्थमें है। चतुर्दश भुवनके रक्षा करनेके कारण ॐकार नाम हुआ ॥ २ ॥

---

(१) गोपथब्रा० पू० भा० प्र० २ ब्रा० २६ ।

(२) विष्णुस० भा० [शब्दकल्पद्रुमकोशे च]

संस्कृतम् ।

(१) अवति संसारसागरादिति ओ३म् । अवतेष्टिलोपश्चेत्यौणादिकसूत्रेण मन्प्रत्ययः । मन्प्रत्ययस्य टिलोपः । ज्वरत्वरेत्यादिनोठ्, ततो गुणः ततः श्लिष्टोच्चारणमिति प्रक्रियया ओ३म् । इति निष्पन्नम् ॥ ३ ॥

(२) प्र–णु-स्तुतौ-प्रकर्षेण नूयते स्तूयते आत्मा स्वेष्टदेवता अनेनेति प्रणवः ॥ ४ ॥

भाषा ।

संसारसागरसे रक्षा करता है इससे ॐ नाम हुआ । अव धातुसे "अवतेष्टिलोपश्च"–इस उणादि सूत्रसे मन प्रत्यय होने पर और मन्प्रत्ययके टिलोप करने पर (ज्वरत्वर०) इत्यादि सूत्रसे ऊठ् करनेसे तदनन्तर गुण करने पर मिला करके उच्चारण करनेसे ॐ नाम सिद्ध हुआ ॥ ३ ॥

प्र–उपसर्ग पूर्वक 'णु' धातु स्तुति अर्थमें है । अच्छी तरहसे स्तुति कीजाय आत्मा स्वेष्ट देवताकी जिसकरके वह प्रणव है ॥ ४ ॥

---

(१) बृहत्सं० भा० ।
(२) विष्णुस० भा० ।

संस्कृतम् ।

(१) अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्चाक्षरत्रयम्॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रिदैवत्य उदाहृतः ॥ ५ ॥

(२) प्रणवो हि परन्तत्त्वं त्रिवेदं त्रिगुणात्मकम् ॥ त्रिवेदत्वं त्रिधामं च त्रिप्रज्ञं त्रिरवस्थितम् ॥ ६ ॥

त्रिमानं च त्रिकालं च त्रिलिङ्गं कवयो विदुः॥
सर्वमेतत्त्रिरूपेण व्याप्तं तु प्रणवेन तु ॥ ७ ॥

भाषा ।

अकार, उकार, मकार यह तीनों अक्षर ब्रह्मा, विष्णु रुद्र, त्रिदेवता कहे गये हैं ॥ ५ ॥

निश्चय करके प्रणव परमतत्त्व तीन वेद और तीन गुण रूप है । तथा तीन धाम तीन प्रज्ञा तीन अवस्था रूप है॥६॥

तीन प्रमाण तीन काल और तीन रूप कवि लोग जानते हैं । यह सर्व सृष्टि विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वररूप प्रणवसे परिपूर्ण है ॥ ७॥

---

(१) बृ० यो० याज्ञवल्क्य० । अ० २।१९-२० ।

(२) बृ० पाराशरसं० (षट्कर्माणि स्वरूपवर्णनम्) अ० ४। श्लो० १०-११।

मात्राभेदाः ।

(१) अ १	उ २	म ३	अर्द्धमात्रा ४
रक्ता	कृष्णा	कपिला	शुद्धस्फाटिकसन्निभा
ऋक्	यजुः	साम	अथर्वणः
भूः	भुवः	स्वः	महाव्याहृतयः
गायत्र्यम्	त्रिष्टुभम्	जागतम्	अनुष्टुभम्
भूमिलोकः	अंतरिक्षलोकः	सुरलोकः	परलोकः
अग्निः	वायुः	आदित्यः	सर्वदैवत्या
रजः	सत्त्वम्	तमः	निर्गुणः
ब्रह्मा	विष्णुः	शिवः	निराकारः
विराट्	हिरण्यगर्भः	ईश्वरः	ब्रह्म
विश्वः	तैजसः	प्राज्ञः	कूटस्थः
बहिःप्रज्ञः	अन्तःप्रज्ञः	घनप्रज्ञः	त्रिप्रज्ञरहितः
स्थूलशरीरम्	सूक्ष्मशरीरम्	कारणशरीरम्	अशरीरम्
जाग्रत्	स्वप्नः	सुषुप्तिः	तुरीया
मनआदि १४	अन्तःकरणं ४	चित्तम्	करणरहितम्
वाचमध्या०	प्राणमध्या०	मनअध्या०	ज्योतिरध्यात्मम्
स्थूलभुक्	सूक्ष्मभुक्	आनन्दभुक्	भोगरहितः
ब्रह्मचर्यः	गृहस्थः	वानप्रस्थः	संन्यासः
धर्मः	अर्थः	कामः	मोक्षः
ब्रह्मलोक-प्राप्तिः	विष्णुलोक-प्राप्तिः	शिवलोक-प्राप्तिः	अनामयपद-प्राप्तिः

(१) गोपथब्रा०ब्रह्मविद्योप०अथर्वशिखोप०बृ०यो०याज्ञ०बृ० पाराशर० गायत्रीनिर्वाणशिवरहस्ये ।

मात्राभेदेष्वग्न्यादीनां व्याख्याः ।

संस्कृतम् ।

अग्निः=अञ्चु गतिपूजनयोः-गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति-पूजनं सत्कारः । अञ्चति अर्च्यते वा सोयमग्निः ॥ १ ॥

वायुः=वा गतिगन्धनयोः-गन्धनं हिंसनम्, वाति सोऽयं वायुः चराचरं जगद्धारयति वा स वायुः ॥ २ ॥

आदित्यः = दोऽवखण्डने-अवखण्डनं विनाशः। द्यति नश्यतीति व्युत्पत्त्या दित्यः न दित्यः अदित्यः अदित्यः एवादित्यः ॥ ३ ॥

भाषा ।

(अग्निः) 'अञ्चु' धातु गति पूजन अर्थमें है, और गतिके ज्ञान, गमन, प्राप्ति ये तीन अर्थ हैं,पूजन सत्कार है । सर्वत्र जो व्याप्त है अथवा सबसे पूजित है वह अग्नि है॥१॥

(वायुः) 'वा' धातु गति गन्धन अर्थमें है, गन्धन कहते हैं हिंसनको, चलै जो अथवा चराचर जगत्को प्राणरूपसे धारण करै वह वायु है । वायु परमेश्वर है ॥ २ ॥

(आदित्यः) 'दो' धातु 'अवखण्डन' अर्थमें है । अवखण्डन विनाशको कहते हैं । जो नाश हो वह दित्य है और जिसका नाश न हो वह अदित्य है और वही आदित्य है॥३॥

संस्कृतम् ।

ब्रह्मा=बृह बृहि वृद्धौ, बृंहयति वर्द्धयति जगत् इति ब्रह्मा ॥ ४ ॥

विष्णु=विष्लृ व्याप्तौ, वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स विष्णुः ॥ ५ ॥

शिवः=शीङ् शयने-शेते चराचरं जगदस्मिन् स शिवः ॥ ६ ॥

निराकारः=नास्त्याकारो यस्य स निराकारः॥७॥

विराट्="राजृ दीप्तौ"-विविधं चराचरं जगत राजते प्रकाशते स विराट् ॥ ८ ॥

भाषा ।

(ब्रह्मा) 'बृह' 'बृहि' का अर्थ वृद्धि है जो संसारके बढावे उसे ब्रह्मा कहते हैं । और स्वयं बृहत् और परिपूर्ण हो उसे भी ब्रह्मा कहते हैं ॥ ४ ॥

(विष्णुः) 'विष्लृ' धातुका अर्थ व्याप्त है जो चराचर जगत्में व्याप्त हो वह विष्णु है ॥ ५ ॥

(शिवः) 'शी' धातुका शयन अर्थ होता है, चराचर जगत् जिसमें सोवे उसे शिव कहते हैं ॥ ६ ॥

(निराकारः)जिसका स्वरूप नहीं है वह निराकार है॥७॥

(विराट्) राजृ धातु प्रकाश अर्थमें है जो नानाप्रकारके चराचर जगत्को प्रकाशित करै वह विराट् है ॥ ८ ॥

संस्कृतम् ।

हिरण्यगर्भः = हिरण्यं तेजसो नाम, हिरण्यानि सूर्यादीनि तेजांसि गर्भे यस्य स हिरण्यगर्भः–वा हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भः हिरण्यगर्भः (ज्योतिर्वै हिरण्यम्–शतपथब्रा०) = हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् (यजुर्वेद) ॥ ९ ॥

ईश्वरः = ईश ऐश्वर्ये,–ईष्टे ऐश्वर्यं करोति असौ ईश्वरः सर्वैश्वर्यवानिति ॥ १० ॥

भाषा ।

(हिरण्यगर्भः) हिरण्य तेजका नाम है । प्रकाशरूप सूर्यादि तेज जिसमें व्याप्त है वह हिरण्यगर्भ है । अथवा सूर्यादिक तेजोंका उत्पत्तिस्थान हिरण्यगर्भ है । ज्योति ही निश्चय करके हिरण्य है ऐसा शतपथ ब्राह्मणका वचन है । हिरण्यगर्भ प्रथम हुआ जिससे भूतोंकी उत्पत्ति हुई । वही एक पति था, यह यजुर्वेदका वचन है ॥ ९ ॥

(ईश्वरः) 'ईश' धातु ऐश्वर्य अर्थमें है । जो अपने ऐश्वर्यसे सबका पालन करे वह ईश्वर है, अथवा जो सर्व ऐश्वर्यवाला है ॥ १० ॥

संस्कृतम् ।

विश्व=विश प्रवेशने–विशन्ति सर्वाणि भूतानि आकाशादीनि यस्मिन् स विश्वः (वा) विशति व्यष्टिस्थूलशरीरं प्राप्नोतीति विश्वः ॥ ११ ॥

तैजसः = तिज निशाने, निशानं सूक्ष्मीकरणम्, तेजांसि सूक्ष्मवासनामयप्रज्ञायामाश्रयत्वेन वर्तमान इति तैजसः, वा सूर्यादीनां प्रकाशत्वादिति ॥ १२ ॥

भाषा ।

(विश्वः) 'विश' प्रवेशन अर्थमें है। प्रवेश हो सम्पूर्ण भूत आकाशादि जिसमें वह विश्व है, व्यष्टि स्थूल शरीरमें जो परिपूर्ण है वह विश्व है ॥ ११ ॥

(तैजसः) 'तिज' निशान अर्थमें है। निशान सूक्ष्म करनेको कहते हैं। सूक्ष्म वासनामय बुद्धिमें आश्रय करके जो साक्षी रूपसे वर्तमान है वह तैजस है, अथवा सूर्य्यादिकोंका प्रकाशक होनेसे तैजस नाम है ॥ १२ ॥

संस्कृतम् ।

प्राज्ञः = ज्ञा अवबोधने—जानातीति ज्ञः, प्रकृष्टश्चासौ ज्ञश्च प्रज्ञः (वा) प्रकृष्टं स्वप्रकाशात्मनि ज्ञानं ज्ञप्तिरज्ञानवृत्त्यात्मको बोधो यस्य सः प्रज्ञः (वा)प्रजानाति चराचरं जगत् स प्रज्ञः,प्रज्ञ एव प्राज्ञः ॥ १३ ॥

कूटस्थः=कूटे मायाकार्यविकारे आकाशवत्तिष्ठतीति कूटस्थः । (कूटस्थोऽक्षर उच्यते। गी० अ० १५।१६) ॥ १४ ॥

भाषा ।

(प्राज्ञः) 'ज्ञा' धातु अवबोधन अर्थमें है, अच्छी तरहसे जो जाने उसका नाम प्रज्ञ है, अथवा स्वप्रकाशात्मामें अज्ञानरूप वृत्तिका जिसको बोध है वह प्रज्ञ है, अथवा चराचर जगत्को जो जानता है वह प्रज्ञ है । प्रज्ञ ही प्राज्ञ है ॥ १३ ॥

(कूटस्थः) कूट अर्थात् मायाके कार्यके विकारमें आकाशकी तरह जो स्थित है वह कूटस्थ है । कूटस्थको अक्षर (नाश रहित) कहते हैं (गीता अध्याय १५ ।१६)॥१४॥

प्रकारान्तरेण मात्रार्थाः ।

संस्कृतम् ।

(१) समष्टिव्यष्टिस्थूलप्रपञ्चोपहितचैतन्यमकारार्थः,तत्स्थूलप्रपञ्चांशपरित्यागेन केवलचैतन्यमात्रमकारेण लक्ष्यते ॥ १ ॥

तथा समष्टिव्यष्टिसूक्ष्मप्रपंचोपहितं चैतन्यमुकारार्थः । तत्सूक्ष्मप्रपंचांशपरित्यागेन केवलचैतन्यमात्रमुकारेण लक्ष्यते ॥ २ ॥

भाषा ।

समष्टि व्यष्टि स्थूल प्रपञ्चोपहित चैतन्य अकारका वाच्यार्थ है तिस स्थूल प्रपञ्चरूप अंशके परित्यागसे जो केवल चैतन्यमात्र रहता है वह अकारसे लक्षित होता है ॥१॥

तथा समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म प्रपञ्चोपहित चैतन्य उकारका वाच्यार्थ है तिस सूक्ष्म प्रपंच अंशके परित्यागसे जो केवल चैतन्य शेष है वह उकारका लक्ष्यार्थ है ॥ २ ॥

---

(१) शिवरहस्यभा० ।

संस्कृतम् ।

तथा समष्टिव्यष्टिस्थूलसूक्ष्मप्रपंचद्वयकारणभूतमायोपहितचैतन्यं मकारार्थः । तादृशमायांशपरित्यागेन केवलचैतन्यमात्रं मकारेण लक्ष्यते ॥ ३ ॥

एवं तुरीयत्वसर्वानुगतत्वोपहितं चैतन्यमर्द्धमात्रार्थः, तदुपाधिपरित्यागेनार्द्धमात्रया चैतन्यमात्रं लक्ष्यते । एवं चतुर्णां समानाधिकरणपादभेदबोधे परिपूर्णमद्वितीयं चैतन्यमात्रमेव सर्वद्वैतोपमर्देन सिद्धं भवति ॥ ४ ॥

भाषा ।

तथा समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म दोनों प्रपञ्चोंका कारण जो माया उपहित चैतन्य है वह मकारका वाच्यार्थ है। इसी प्रकार मायारूप अंशके परित्यागसे केवल चैतन्यमात्र मकारका लक्ष्यार्थ है ॥ ३ ॥

इसी प्रकार तुरीय सर्वमें अनुगत व्यापक उपहित चैतन्य अर्धमात्राका वाच्यार्थ है तिस उपाधिके परित्यागसे अर्धमात्राका जो चैतन्य मात्रा शेष रहता है वह अर्धमात्राका लक्ष्यार्थ है । इसी प्रकार चारों समानाधिकरण पाद (चरण) के भेदको जाननेसे परिपूर्ण अद्वितीय चैतन्यमात्र सर्वद्वैतभावके मर्दनसे सिद्ध होता है ॥ ४ ॥

व्याहृत्यर्थः ।

संस्कृतम् ।

(१) विशेषेण आहृतिः सर्वविराजः प्राह्वानं प्रकाशीकरणं व्याहृतिः ॥ १ ॥

(२) भूर्भुवःसुवर्ब्रह्म । भूर्भुवःसुवराप ओम् २

(३) ब्रह्मसत्ताव्यतिरेकेण भूर्लोकादिप्रपंचस्य पृथक्सत्ताऽनङ्गीकारात्तद्ब्रह्मैव ॥ ३ ॥

भाषा ।

विशेषरूपसे आहृति अर्थात् सर्वविराट्का बोध अर्थात् प्रकाश करनेसे व्याहृति हुआ ॥ १ ॥

भूर्भुवः स्वः ब्रह्मरूप है, तथा भूर्भुवः स्वः और जल ओंकाररूप है ॥ २ ॥

ब्रह्मसत्ताके विना भूर्लोकादिक प्रपंचकी पृथक् सत्ताका अङ्गीकार न करनेसे वह निश्चय करके ब्रह्म है ॥ ३ ॥

---

(१) विष्णुस० भा० ।

(२) महानारा० ८।१॥१४।१।

(३) निर्णयकल्पवल्याख्यसं० भा० ।

संस्कृतम् ।

(१) भूर्भुवस्स्वस्तथा पूर्वं स्वयमेव स्वयम्भुवा । व्याहृता ज्ञानदेहेन तेन व्याहृतयः स्मृताः ॥ ४ ॥

(२) प्रधानं पुरुषः कालो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सत्त्वं रजस्तमस्तिस्रः क्रमाद्व्याहृतयः स्मृताः ॥५॥

भूः ।

(३) भवतेः क्विपि भूरिति रूपम् ॥ १ ॥

भाषा ।

सृष्टिसे पूर्व स्वयं ब्रह्माने ज्ञानदेहसे भूर्भुवः स्वः कहा है तिस कारणसे व्याहृतियां कही जाती हैं ॥ ४ ॥

प्रधान, पुरुष, काल, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सत्त्व, रज, तम तीनों क्रमसे व्याहृतियाँ कही गयी हैं ॥ ५ ॥

भूः = 'भू' धातुसे क्विप् प्रत्यय करनेसे 'भूः' ऐसा रूप होता है ॥ १ ॥

---

(१) यो० । याज्ञ० । अ० । श्लो० ९ ।

(२) कूर्मपुराणे । उत्तरविभागे । अ० १४ । श्लो० ५४ ।

(३) बह्वृचसन्ध्यापद्धतिभा० पृ० ८ ।

संस्कृतम् ।

(१) भवतीति भूः सर्वेषामुत्पत्तिस्थानं लिङ्गस्थानं पातालादिसप्तभुवनसहितो भूर्लोकश्च ॥२॥

(२) भवन्ति चास्मिन्भूतानि स्थावराणि चराणि च। तस्माद्भूरिति विज्ञेया प्रथमा व्याहृतिस्तु या ॥ ३ ॥

(३) भूरिति वै प्राणः । प्राणयति जीवयति सर्वान् प्राणिनः सः । (स उ प्राणस्य प्राण इति-श्रुतेः) प्राण ईश्वर एव ॥ ४ ॥

भाषा ।

भवतीति भूः (पृथिवी) जो सर्वके उत्पत्तिका स्थान है लिङ्गस्थान पातालादि सप्त भुवन सहित भूलोक है ॥ २॥

जिसमें चराचर भूत उत्पन्न होते हैं तिसकारणसे भूः - प्रथम व्याहृति कही गई है ॥ ३ ॥

भूः यह निश्चय करके प्राण है । सम्पूर्ण प्राणियोंको जो जिलावै उसे प्राण कहते हैं । प्राण ही ईश्वर है (श्रुति) (वह ईश्वर प्राणका भी प्राण है) ॥ ४ ॥

---

(१) विष्णुस० भा० ।

(२) बृ० यो० याज्ञ० । अ० ३।१६-१७ ।

(३) तैत्तिरीयोप० (शिक्षाध्याये) अनु० ५ मं० ३ ।

संस्कृतम् ।

(१)भूरिति वा अग्निः । (अत्राग्निरूप ईश्वर एव) ॥ ५ ॥

(२) भवति– अस्तीति सदिति व्युत्पत्त्या भूरिति सन्मात्रमुच्यते ॥ ६ ॥

भुवः ।

(३)भावयति स्थापयति विश्वमिति भुवः॥१॥

(४) भवन्ति भूयो भूतानि उपभोगक्षये पुनः कल्पान्ते उपभोगाय भुवस्तेन प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥

भाषा ।

अथवा भूः यह अग्नि है और अग्नि ही ईश्वर है ॥ ५ ॥

भूः अर्थ जो तीनों कालमें रहै, तीनों कालमें रहनेसे सत् परमात्मारूप है ॥ ६ ॥

विश्वका जो स्थापन करै वह भुवः है ॥ १ ॥

कल्पान्तमें भोगके क्षयके पश्चात् फिर उपभोगके लिये उत्पन्न होते हैं इस कारणसे भुवः कहा गया है ॥ २ ॥

---

(१) तैत्तिरीयोप०(शीक्षाध्याये) अनु० ५ मं० २ ।

(२) शङ्करभा० ।

(३) सायनभा० ।

(४) बृ० यो० याज्ञ० अ० ३।१७–१८ ।

संस्कृतम् ।

(१)भुवरिति सर्वं भावयति प्रकाशयतीति व्युत्पत्त्या चिद्रूपमुच्यते ॥ ३ ॥

(२) भुव इत्यपानः, अपानयति दूरीकरोति सर्वं दुःखं मुमुक्षूणां मुक्तानां स्वसेवकानां धर्मात्मनां यः सोऽपानो दयालुरीश्वरः ॥ ४ ॥

(३) भुव इति वायुः । वायुरूप ईश्वरः॥५॥

स्वः ।

(४) सु अवति प्राप्नुवते, इति स्वः ॥ १ ॥

भाषा

भुवः यह सबको प्रकाश करता है, इस व्युत्पत्तिसे चैतन्यरूप कहा जाता है ॥ ३ ॥

भुवः अपान वायु है जो मुमुक्षुवों, जीवन्मुक्तों, अपने सेवकों और धर्मात्माओंके सर्व दुःखोंको दूर करता है वह अपानवायुरूप दयालु ईश्वर है ॥ ४ ॥

भुवः यह वायुरूप है, वायु ही ईश्वर है ॥ ५ ॥

'अवति' का अर्थ परिपूर्ण है, भली प्रकार परिपूर्ण होनेसे स्वः कहा जाता है ॥ १ ॥

---

(१) शंकरभाष्ये ।

(२) तैत्तिरीयोप० शीक्षाध्याये अनु० ५ मं० ३।

(३) तैत्तिरीयोप० शीक्षाध्याये अनु० ५ मं० २ ।

(४) सायनभा० ।

संस्कृतम् ।

(१) स्वर्यन्ते उच्चार्यन्ते प्रकटीभवन्ति देहदेवता यतः तत् स्वः त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवतालयः स्वर्लोक इति ॥ २ ॥

(२) सुवरित्यादित्यः। आदित्यरूपेश्वरः॥३॥

(३) शीतोष्णवृष्टितेजांसि जायन्ते तानि वै ततः। आलयस्सुकृतीनां च स्वर्लोकस्स उदाहृतः ॥ ४ ॥

भाषा ।

स्वर्यन्ते-देहके देवता जिससे प्रकट हों उसको स्वः कहते हैं अर्थात् तैंतीस कोटि देवताओंका स्थान स्वर्गलोक है ॥ २ ॥

सुवः यह आदित्य है आदित्य ही ईश्वर है ॥ ३ ॥

शीत, उष्ण, वृष्टि, तेज, जिससे उत्पन्न होते हैं वह पुण्यात्मा पुरुषोंका स्थान स्वर्गलोक कहा जाता है ॥ ४ ॥

---

(१) विष्णुस० भा० ।

(२) तैत्तिरीयोप० शीक्षाध्याये अनु० ५ मं० २।

(३) बृ० यो० याज्ञ० अ० ३।१८-१९।

संस्कृतम् ।

(१) स्वःशब्दो हि सुखवाची प्रसिद्धः । तदुक्तम्–पूर्णो भूतिवरोऽनन्तसुखो यद्व्याहृतीरितः ॥ ५ ॥

(२) स्वरिति व्युत्पत्त्या सुष्ठु सर्वैर्व्रियमाणसुखस्वरूपमुच्यते ॥ ६ ॥

(३) सुवरिति व्यानः–व्यानयति चेष्टयति प्राणादिसकलं जगदभिव्याप्य स व्यानः सर्वाधिष्ठानं बृहद्ब्रह्म ॥ ७ ॥

भाषा ।

स्वः शब्द सुखवाची प्रसिद्ध है यह कहा है । पूर्ण ऐश्वर्यश्रेष्ठ अनन्तसुख जिससे हो वह स्वः व्याहृति है ॥ ५ ॥

स्वः इस व्युत्पत्तिसे सुष्ठु सबोंसे कथित सुखस्वरूप कहा जाता है ॥ ६ ॥

स्वः यह व्यान वायु है, जो जगत्में व्यापक होकर प्राणादि सर्वको चेष्टा कराता है वह व्यान वायु सबका अधिष्ठान व्यापक ब्रह्म है ॥ ७ ॥

---

(१) बहृचसन्ध्याभा० पृ० ९ ।

(२) शाङ्करभा० ।

(३) तैत्तिरीयभा० शीक्षाध्याये अनु० ५ मं० ३ ।

गायत्र्यर्थः ।

तत् ।

संस्कृतम् ।

(१) तदिति अव्ययं परोक्षार्थे ॥ १ ॥

(२) तदिति लुप्तषष्ठ्यन्तं भर्गो विशेषणं वा ॥ २ ॥

(३) तच्छब्दः स्वबुद्धिभेदकृतः अतिदूरतमेऽत्युत्कर्षाख्येऽर्थे वर्तते ॥ ३ ॥

(४) तच्छब्देन प्रत्यग्भूतं स्वतस्सिद्धं परं ब्रह्मोच्यते ॥ ४ ॥

भाषा ।

तत् यह अव्यय परोक्ष अर्थमें है अर्थात् जो दिखलाई न दे ॥ १ ॥

तत् यह लुप्तषष्ठ्यन्त है वा भर्गशब्दका विशेषण है ॥२॥

तत् शब्द अपनी अपनी बुद्धिके भेदसे अति दूर अति उत्कर्ष (अति श्रेष्ठ) अर्थमें वर्तमान है ॥ ३ ॥

तत् शब्दसे आत्मरूप स्वतस्सिद्ध परब्रह्म कहा जाता है ॥ ४ ॥

---

(१) सन्ध्याभा० ।

(२) तारा० ।

(३) विष्णु० भा० ।

(४) शाङ्करभा० ।

संस्कृतम् ।

(१) तत्, तस्य सर्वासु श्रुतिषु प्रसिद्धस्य ॥५॥

(२) ओंतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधस्स्मृतः ॥ ६ ॥

सवितुः ।

(३) षुञ्–प्राणिप्रसवे इत्यस्य धातोरेतद्रूपम्, सुनोति सूयते वा उत्पादयति चराचरं जगत् स सविता सूर्यमण्डलान्तर्गतपुरुष ईश्वरः ॥ १ ॥

भाषा ।

तत् उसका–जो सब श्रुतियोंमें प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥

ॐ[1] तत्[2] और सत्[3] ये ब्रह्मके तीन प्रकारके नाम कहे गये हैं इससे 'तत्' ब्रह्मका नाम है ॥ ६ ॥

'षुञ्' धातु प्राणिके उत्पन्न करनेके अर्थमें है, इस धातुसे सविता यह रूप बना जो चराचर जगतको उत्पन्न करता है वह सविता देव सूर्यमण्डलके अन्तर्गत पुरुष ईश्वर है॥ १ ॥

---

(१) सायन० ।

(२) गीता १७ । ३ ।

(३) भारद्वाजभा० रावण० ।

संस्कृतम् ।

(१) षु=प्रसवैश्वर्य्ययोः, सर्ववस्तूनां प्रसवः उत्पत्तिस्थानं सर्वैश्वर्य्यस्य च ॥ २ ॥

(२) षू=प्रेरणे-सुवति स्वस्वव्यापारे प्रेरयति यः स सविता प्रेरकान्तर्यामिविज्ञानानन्दस्वभावो हिरणयगर्भोपाध्यवच्छिन्नः ॥ ३ ॥

(३) सू, तृच्-जगत्स्त्रष्टरि परमेश्वरे ॥ ४ ॥

(४) सवनात् सविता ॥ ५ ॥

भाषा ।

षु धातु उत्पत्ति और ऐश्वर्य अर्थमें है इस कारण सर्व वस्तुओंके उत्पत्ति और ऐश्वर्यका स्थान सविता देव है ॥२॥

षू धातु प्रेरणा करनेके अर्थमें है, जो सबको अपने अपने व्यापारमें प्रेरणा करै वह सविता प्रेरक अन्तर्यामी विज्ञान आनन्दस्वरूप हिरण्यगर्भ उपाधिमें व्यापक है ॥ ३॥

तृच् प्रत्यय सू धातु जगत्का सृष्टिकर्ता परमेश्वरके अर्थमें है ॥ ४ ॥

पालन करनेसे सविता नाम हुआ ॥ ५ ॥

---

(१) विष्णुस० भा० । भारद्वाज० महीधर० ।

(२) महीधरभा० ।

(३) वाचस्पत्ये ।

(४) मैत्र्युप० ६।३५ ।

संस्कृतम् ।

(१) सविता सर्वभूतानां सर्वभावांश्च सूयेत ॥
सवनात्प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते ॥ ६ ॥
(२) सविता वै प्रसवानामीशे ॥ ७ ॥
(३) सूर्याद्भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु॥
सूर्ये लयम्प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥ ८ ॥
(४) हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ॥ योऽसावादित्ये पुरुषः सोसावहम् ॥ ९ ॥

भाषा ।

सर्वभूतोंका उत्पादक है और सर्व भावोंको उत्पन्न करता है। उत्पन्न और प्रेरणाकरनेसे सविता कहते हैं ॥ ६॥

सर्वसृष्टिका ईश्वर सविता है ॥ ७ ॥

सूर्यभगवान्से सर्वसृष्टिकी उत्पत्ति पालन और संहार होता है, जो सूर्यका स्वरूप है वही निश्चयकरके मैं हूँ ॥८॥

तेजोमय ढकनेसे सत्यरूप परमात्माका मुख ढका है। जो पुरुष सूर्यमण्डलमें है वही मैं हूँ ॥ ९ ॥

---

(१) बृ० यो० याज्ञ० अ० ९।५५ ।सायन० ।

(२) कृष्णयजुः ।

(४) सूर्योप० ।

(३) मैत्र्यप० ६ । ३५ ।

संस्कृतम् ।

(१) य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ॥ १० ॥

(२) आदित्यमण्डले ध्यायेत्परमात्मानमव्ययम् ॥ ११ ॥

(३) सूते सकलजनदुःखनिवृत्तिहेतुं वृष्टिं जनयतीति सविता (याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्षति-श्रु०) (आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः--स्मृ०) ॥ १२ ॥

भाषा ।

जो यह सूर्यमण्डलमें तेजोमय पुरुष सुवर्णश्मश्रु और केशवाला देख पडता है वह नखसे शिखातक तेजोमय है ॥ १० ॥

आदित्यमण्डलमें अव्यय परमात्माका ध्यान करै ॥ ११ ॥

सकलजनके दुःखके निवृत्तिका कारण सृष्टिको जो करै वह सविता (सूर्य्यभगवान्) है (जिन किरणोंसे आदित्य भगवान् तपते हैं उन्हीं किरणों द्वारा जलको खींच करके मेघरूपसे बर्साते हैं-श्रुति) आदित्यसे वृष्टि, वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजा उत्पन्न होती है ॥ १२ ॥

---

(१) छान्दोग्योप० । अ० १ । खं० ६ । मं० ६ ।
(२) शौनक० ।
(३) संध्याभा० ।

संस्कृतम् ।

(१) देवोयं भगवान्भानुरन्तर्यामी सनातनः ॥ १३ ॥

(२) एष भूतात्मको देवः सूक्ष्मोऽव्यक्तःसनातनः । ईश्वरः सर्वभूतानां परमेष्ठी प्रजापतिः॥१४॥

नमः सावित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे॥ त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरिञ्चिनारायणशंकरात्मने ॥ १५ ॥

भाषा ।

यह सूर्य भगवान् अन्तर्यामी और सनातन देव हैं ॥१३॥
यह भूतात्मारूप देव सूक्ष्म, अव्यक्तरूप और सनातन सर्वभूतोंके ईश्वर, परमेष्ठी प्रजापाति (ब्रह्मा) हैं ॥ १४ ॥

उन सविता सूर्यदेवको नमस्कार है जो जगत्के एक नेत्र हैं, जो जगत्के उत्पात्ति, पालन और नाशके कारण हैं, जो ब्रह्मा-विष्णु-महेशरूप, त्रिगुणरूप धारण करनेवाले और तीनों वेदके स्वरूप हैं ॥ १५ ॥

---

(१) सूर्यपु० अ० १ श्लो० ११ ।
(२) भविष्यपु० ।

संस्कृतम् ।

यन्मण्डलं ज्ञानघनं त्वगम्यं त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम्॥समस्ततेजोमयदिव्यरूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १६ ॥

यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोरात्मा परं धाम विशुद्धतत्त्वम्॥सूक्ष्मान्तरैर्योगपथानुगम्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १७ ॥

भाषा ।

ज्ञानघन, अगम्य, तीनों लोकोंके पूज्य, रजोगुण-तमोगुण-सतोगुणरूप समस्त तेजोमय दिव्यस्वरूप सर्वके वर्णनयोग्य जो सविता देवका मण्डल है वह मुझको पवित्र करै ॥ १६ ॥

सर्ववस्तुओंमें व्यापक विष्णु भगवान्का आत्मा परमधाम विशुद्धतत्त्व (तेज) रूप,योग द्वारा सूक्ष्म बुद्धिवाले महात्माओंके प्राप्त होनेयोग्य सर्वसे उपासनीय ऐसा जो सूर्यभगवान् का मंडल है वह मुझको पवित्र करै ॥ १७ ॥

संस्कृतम् ।

(१) नत्वा सूर्यं परं धाम ऋग्यजुःसामरूपिणम् । प्रज्ञानायाखिलेशाय सप्ताश्वाय त्रिमूर्तये ॥ नमो व्याहृतिरूपाय त्वमोङ्कारः सदैव हि । त्वामृते परमात्मानं न तत्पश्यामि दैवतम् ॥ १ ॥

(२) असौ वै देवः सवितेति ॥ १९ ॥

(३) तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ २० ॥

भाषा ।

परमधाम, ऋग्यजुस्साम-वेदस्वरूप सूर्यको नमस्कार करके ज्ञानस्वरूप, सर्वेश्वर, सात घोडेके रथ पर चलनेवाले ब्रह्मा-विष्णु-महेशस्वरूप, व्याहृतिरूप सूर्यको नमस्कार है आप सदैव ॐकाररूप हैं तुम्हारे परमात्मस्वरूपको छोड-कर अन्य कोई देवता नहीं देखता हूँ ॥ १८ ॥

निश्चय करके यह देव सविता है ॥ १९ ॥
वह श्रेष्ठ सविता है वह अविनाशी है ॥ २० ॥

---

(१) सूर्यपु० अ० १ । १३ । ३३ । ३४ । ३७ ।
(२) शतपथब्रा० ।
(३) श्वेताश्वतर० । ४ । १८ ।

संस्कृतम् ।

(१) सविता वै सर्वस्य प्रसविता अग्निः सवितारमाह सर्वस्य प्रसवितारम् ॥ २१ ॥

(२) चन्द्रमाः सविता प्राण एव सविता विद्युदेव सविता ॥ २२ ॥

(३) सवितुरितिसृष्टिस्थितिलयलक्षणकस्य सर्वप्रपञ्चस्य समस्तद्वैतविभ्रमस्याधिष्ठानं लक्ष्यते (यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रत्ययन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति–तैत्तिरीय०भृ०च०अ०१) ॥ २३ ॥

भाषा ।

निश्चय करके सविता सब सृष्टिका उत्पन्न करनेवाला है। अग्निको सविता कहते हैं, अग्नि ही सबका उत्पन्न करनेवाला है ॥ २१ ॥

चन्द्रमा सविता है, प्राण भी सविता है, विद्युत् भी सविता है ॥ १२ ॥

सृष्टि (उत्पत्ति) पालन लयरूप, सर्वप्रपंचका अर्थात् समस्त द्वैतविभ्रमका आधारभूत सविता है। (जिससे यह सर्वभूत उत्पन्न और पालित होते हैं जिसमें प्रवेश होते हैं तिसके जाननेकी इच्छा करो वही ब्रह्म है) ॥ २३ ॥

(१) निरुक्ते दैवतकाण्डे अ० ७ पा० ७ ख० ९।

(२) गोपथब्रा०। पूर्वभागे। प्र० १ ब्रा० ३३।

(३) शंकरभा० उव्वट० विद्यारण्य०।

संस्कृतम् ।

(१) एष हि खल्वात्मा सविता ॥ २४ ॥

(२) संरक्षिता च भूतानां सविता च ततः स्मृतः ॥ २५ ॥

(३) सूते सकलश्रेयांसि ध्यातॄणामिति सविता (उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते-इति श्रुतेः) ॥ २६ ॥

भाषा ।

निश्चय करके यही सविता देव सब भूतोंका आत्मा है ॥ २४ ॥

सब भूतोंकी रक्षा करनेसे सविता नाम हुआ ॥ २५ ॥ ध्यान करनेवालेके सर्व कल्याणोंको उत्पन्न करनेके कारण सविता नाम हुआ (उदय और अस्त समय सूर्य भगवान्का ध्यान करता हुआ विद्वान् ब्राह्मण सर्व कल्याणको प्राप्त करता है-यह श्रुति है) ॥ २६ ॥

---

(१) मैत्र्युप० ६ । ८ ।

(२) बृ० यो० याज्ञ० अ० ९ । ९१ ।

(३) सन्ध्याभा० ।

वरेण्यम् ।

संस्कृतम् ।

(१) (एण्य)-प्रधाने प्रार्थनीये च-यद्वरं वर्तुम् अर्हम्, अतिश्रेष्ठं तद्वरेण्यम् ॥ १ ॥

(२) वरणीयं प्रार्थनीयम्, जन्ममृत्युदुःखादीनां नाशाय ध्यानेनोपासनीयम् ॥ २ ॥

(३) पुरुषार्थकामिभिरर्थ्यमानम् ॥ ३ ॥

भाषा ।

एण्य प्रत्यय युक्त वृञ्=धातु प्रधान और प्रार्थनीय अर्थमें है, जो वर्णन करनेके योग्य अतिश्रेष्ठ है वही वरेण्य शब्दसे कहा गया है ॥ १ ॥

वरणीय=प्रार्थनीय अर्थमें है अर्थात् जन्म, मृत्यु-दुःखादिकोंके नाश-निमित्त ध्यानपूर्वक उपासना करने-योग्य है ॥ २ ॥

पुरुषार्थकामनावालोंसे प्रार्थित है ॥ ३ ॥

---

(१) वाचस्पत्ये ।

(२) सायनभा० भारद्वाज० रावण० महीधर० ।

(३) तैत्तिरीय सं० भा० गु० ४ पृ० ९३ ।

संस्कृतम् ।

(१) सर्वैरुपास्यतया ज्ञेयतया च सम्भजनीयम् ॥ ४ ॥

(२) वरणीयमभेदगम्यमित्यर्थः ॥ ५ ॥

(३) सर्ववरणीयं निरतिशयानन्दरूपम् ॥६॥

(४) वरेण्यमाश्रयणीयम् ॥ ७ ॥

(५) वरेण्यं वरणीयञ्च संसारभयभीरुभिः ॥
आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वा मुमुक्षुभिः॥ ८ ॥

भाषा ।

सर्वप्राणियों करके उपास्यभाव और ज्ञेयभाव करके चिन्तनकरने योग्य है ॥ ४ ॥

वरणीय=अर्थात् अभेद ज्ञानकरके जाननेके योग्य है॥५॥

सबके चिन्तन करनेके योग्य परमानन्दरूप ब्रह्म है ॥६॥

वरेण्यम्=आश्रय लेनेके योग्य है ॥ ७ ॥

वरेण्यम्=संसारके भयसे डरे हुए पुरुषोंसे वा मुक्तिकी इच्छावाले जनोंसे आदित्यके अन्तर्गत जो भर्ग नाम तेज है वह प्रार्थनीय है ॥ ८ ॥

---

(१) भारद्वाजस्मृ० ।

(२) वि० सं० भा० ।

(३) शंकरभा० ।

(४) विद्यारण्य० ।

(५) यो० याज्ञ० ९ । ५६–५७ ।

संस्कृतम् ।

(१) वरेण्यं सर्वतेजोभ्यः श्रेष्ठं वै परमं पदम् ।
स्वर्गाऽपवर्गकामैर्वा वरणीयं सदैव हि ॥ ९ ॥

(२) वृणुते वरणार्थत्वाज्जाग्रत्स्वप्नादिवर्जितम् ।
नित्यं शुद्धं बुद्धमेकं सत्यं तद्धीमहीश्वरम् ॥१०॥

(३) सवितुस्स्वात्मभूतन्तु वरेण्यं सर्वजन्तुभिः ।
भजनीयं द्विजा भर्गः तेजश्चैतन्यलक्षणम् ॥११ ॥

(४) वरेण्यं सेव्यम् ॥ १२ ॥

भाषा ।

वरेण्यम्=सर्वतेजोंसे श्रेष्ठ परम्पद है । स्वर्ग तथा मोक्षकी कामनावाले पुरुषोंसे सदैव प्रार्थनीय है ॥ ९ ॥

वृणुते (वरणार्थ होनेसे) जाग्रत्स्वप्नादिसे वर्जित, नित्य, शुद्ध, बुद्ध एक सत्यरूप तिस ईश्वरका ध्यान करता हूँ ॥ १० ॥

सविता देवका आत्मरूप, सर्वजन्तुओंसे प्रार्थनीय ऐसा जो भर्ग तेज चैतन्यरूप है वह द्विजों द्वारा भजन करने योग्य है ॥ ११ ॥

वरेण्यम्=सेवाकरनेयोग्य है ॥ १२ ॥

---

(१) अग्निपु० अ०-२१६ । ५ ।
(२) अग्निपुराण अ० २१६ श्लो० ६
(३) स्कन्दपु० सूतसंहितायाम् ।
(४) खण्डराजदीक्षित सं० भा० ।

भर्गः ।

संस्कृतम् ।

(१)भाभिर्गतिरस्य हीति भर्गो भर्जयतीति वैष भर्गः ॥ १ ॥

(२)भञ्जो=आमर्दने;भृजी भर्जन इत्येतयोर्धात्वोर्भर्गः । भजतां पापभञ्जनहेतुभूतमित्यर्थः ॥ भ्राजृ दीप्तावित्यस्य धातोर्वा भर्गः तेज इत्यर्थः॥२॥

भाषा ।

भा=गति-किरणद्वारा गति अर्थात् विषयव्याप्ति है जिसकी वह भर्ग है अथवा जगत्के नाश करनेके कारण भर्ग नाम हुवा ॥ १ ॥

भञ्ज् धातु आमर्दन अर्थमें और भृज् धातु भजन अर्थमें है, इन दोनों धातुओंसे भजन करनेवालोंके पापके भञ्जनका कारण होनेसे भर्ग नाम हुआ । भ्राजृ धातु दीप्ति अर्थमें है इस धातुका रूप भर्ग है, भर्गका अर्थ तेज है ॥ २ ॥

---

(१) मैत्र्युप० ६ । ७ ।

(२) भारद्वाज० ।

संस्कृतम् ।

(१) भ्रस्ज=पाके, असुन्, भ्रस्जो रोपधयोरमन्यतरस्यामिति रोपधयोर्लोपः रमागमः न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम् ॥ ३ ॥

(२) भ्रस्ज×घञ्, आदित्यान्तर्गते ऐश्वरे तेजसि ॥ ४ ॥

(३) पापानां तापकं तेजोमण्डलम् ॥ ५ ॥

(४) अविद्यादोषभर्जनात्मकज्ञानैकविषयत्वम् ॥ ६ ॥

भाषा ।

भ्रस्ज् धातु पाक अर्थमें असुन् प्रत्यय " भ्रस्जो रोपधयोरमन्यतरस्याम्" इस सूत्रसे उपधाका लोप फिर रमागम न्यङ्क्वादिसे कुत्व होता है इससे भर्ग सिद्ध हुआ ॥ ३ ॥

(घञ् प्रत्यययुक्त भ्रस्ज् धातु) सूर्यमण्डलान्तर्गत ईश्वरसम्बन्धी तेज अर्थमें है ॥ ४ ॥

पापोंके तपाने (नाश करने) वाला तेजरूपमण्डल भर्ग है ॥ ५ ॥

अविद्याके दोषोंका नाश करनेवाला एक (केवल) ज्ञान स्वरूप भर्ग है ॥ ६ ॥

---

(१) गृह्यपरिशिष्ट० ।

(२) तारानाथकोशे ।

(३) सायनभाष्ये ।

(४) शंकर० महीधर० ।

संस्कृतम् ।

(१) भर्गोऽविद्यातत्कार्ययोर्भर्जनाद्भर्गः । स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मकं तेजः ॥ ७ ॥

(२)भ्रस्ज पाके भवेद्धातुर्यस्मात्पाचयते ह्यसौ ॥ भ्राजते दीप्यते यस्माज्जगदन्ते हरत्यपि ॥ ८ ॥

(३) भर्ज्जन्ति नश्यन्ति पापानि संसार-जन्ममरणादिदुःखमूलानि येन असौ भर्गः ॥ ९ ॥

(४)प्रकाशप्रदानेन जगतो बाह्याभ्यन्तरतमो-भञ्जकत्वाद्भर्गः ॥ १० ॥

भाषा ।

अविद्या और उसके कार्योंका नाश करनेसे भर्ग स्वयं-ज्योतिः परब्रह्मरूप तेज है ॥ ७ ॥

जिस कारण पचनार्थक भ्रस्ज़्धातु सबको पचन करता है प्रकाशकरने तथा अन्तमें जगत्के लय करनेके कारण यह भर्ग नाम हुआ ॥ ८ ॥

पाप अर्थात् संसाररूपी जन्ममरणादि दुःखका मूल जिससे नष्ट हो वह भर्ग है ॥ ९ ॥

प्रकाश द्वारा जगत्के भीतर बाहरके अज्ञानरूप तमका नाश करनेसे भर्ग नाम हुआ ॥ १० ॥

---

(१) सायन० विद्यारण्य० भट्टोजिदी० ।

(२) बृ०यो याज्ञ० अ०९ । ५२–५३ ।

(३) सं० भा० ।

(४) वरदराज० ।

संस्कृतम् ।

(१) प्रकाशरूपं यत्प्रकाशेन सर्वप्रकाशः प्रकाशते । ("न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" कठोप०) ११ ॥

(२) भर्गस्तेजः—प्रकाशः प्रकाशो ज्ञानम्, यन्निरुपद्रवं निष्पापं निर्गुणं शुद्धं सकलदोषरहितं पक्वं परमार्थविज्ञानस्वरूपं तद्भर्गः ॥ १२ ॥

भाषा ।

प्रकाशरूप जिसके प्रकाशसे सर्व प्रकाशित है वह भर्ग है (यथा श्रुत्यर्थ) (न वहां सूर्य प्रकाश करता है न चन्द्रमा न तारा न विद्युत्, तो इस अग्निका वहां कब प्रकाश होसकता है; उसके प्रकाश होनेसे पश्चात् सब प्रकाशित होते हैं और तिसीके प्रकाशसे यह सर्व प्रकाशित है—कठोप०) ॥ ११ ॥

भर्ग तेज है प्रकाश है और प्रकाश ज्ञानरूप है जो उपद्रवरहित, पापरहित, निर्गुण, शुद्ध, सकल दोषरहित परिपक्व परमार्थ विज्ञानस्वरूप वही भर्ग है ॥ १२ ॥

---

(१) सन्ध्याभा० ।

(२) निरुक्ते । तारानाथ० ।

संस्कृतम् ।

(१) भ–भासयतीमाँल्लोकानिति ।
र–रञ्जयतीमानि भूतानि ।
ग–गच्छन्त्यस्मिन्नागच्छन्त्यस्मादिमाः
प्रजास्तस्माद्भरणत्वाद् भर्गः ॥ १३ ॥

(२) भेति-भासयते लोकान् रेति रञ्जयते प्रजाः ।
ग इत्यागच्छतेऽजस्त्रं भरगाद्भर्ग उच्यते ॥ १४ ॥

भाषा ।

भ=इन लोकोंको प्रकाशित करता है ।
र= इन भूतोंको आनन्द देता है ।

ग=जिस कारण आत्मामें यह सब प्रजा सुषुप्ति और प्रलय कालमें लयको प्राप्त होती है, पुनः जिसकारण आत्मासे जाग्रत् और सृष्टिकालमें सब उत्पन्न होती है वह गअक्षरका अर्थ है तिस भासन रंजन और गमनोंसे भर्ग शब्द करके सर्वात्माका ग्रहण है ॥ १३ ॥

'भ' सर्वलोकोंको प्रकाश करता है 'र' सर्व प्रजाको आनन्द देता है 'ग' बारम्बार लय होता है तिस कारणसे भर्ग कहलता है ॥ १४ ॥

---

(१) मैत्र्युप० ६ । ७ ।

(२) बृ० यो०याज्ञ०अ०९।श्लो० ४५।४६।५०।५३।५४।२३।

संस्कृतम् ।

भ्राजते च यदा भर्गः पुरुषत्वाच्च पूरुषः ।
सर्वात्मा सर्वभावस्तु आत्मा तेन निगद्यते ॥१५॥
कालाग्निरूपमास्थाय सप्तार्चिः सप्तरश्मिभिः ।
भ्राजते स्वेन रूपेण तस्माद्भर्ग इति स्मृतः (सत्ये) ॥ १६ ॥

ईश्वरं पुरुषाख्यं तु सत्यधर्माणमव्ययम्।भर्गाख्यं विष्णुसञ्ज्ञं तु यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥ १७ ॥
हृद्व्योम्नि तपते ह्येष बाह्ये सूर्यस्य चान्तरे ।
अग्नौ ह्यधूमके ह्येष ज्योतिश्चित्रतरङ्गवत् ॥ १८ ॥

भाषा ।

प्रकाशरूप होनेसे भर्ग नाम है, परिपूर्ण होनेसे पुरुष नाम है, सर्वात्मा और सर्वरूप होनेसे आत्मा कहा गया है ॥ १५ ॥

कालाग्निरूपमें स्थित होकर सप्तार्चि अग्निरूप और सप्तकिरणों करके जो अपने रूपसे प्रकाशित है तिस कारणसे भर्ग है ॥ १६ ॥

ईश्वर पुरुष सत्यधर्मवाला अविनाशी भर्गनामक विष्णु है जिसको जानकर मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

वह भर्ग हृदयाकाशमें तथा बाहर सूर्यमण्डलमें तपायमान होता है और नाना प्रकारके तरंगकी नाईं यह ज्योतिरूप भर्ग धूमरहित अग्निमें प्रकाशस्वरूप है ॥ १८ ॥

संस्कृतम् ।

हृदाकाशे तु यो जीवः साधकैरुपगीयते ।
स एवादित्यरूपेण बहिर्नभसि राजते ॥ १९ ॥
तस्य चान्तर्गतं धाम सूक्ष्मं प्राकाश्यमेव च ।
स चात्मा सर्वभूतानां चेतोमात्रस्वरूपकः॥२०॥
सर्वस्यैवोपरिष्टस्य पूरणात्पुरुषः स्मृताः ।
भवभीत्यन्धकारेभ्यः शं करोति ततः शिवः२१॥
(१)मण्डलं पुरुषो रश्मय इति त्रयं भर्ग-
पदवाच्यम् ॥ २२ ॥

भाषा ।

जो भर्ग हृदयाकाशमें जीवात्मारूपसे साधक पुरुषों करके कथन किया गया है वही भर्ग बाह्याकाशमें आदित्य रूपसे शोभित है ॥ १९ ॥

तिस आदित्यके अन्तर्गत जो सूक्ष्म प्रकाशरूप है वही सब भूतोंका चेतनरूप आत्मा है ॥ २० ॥

वही भर्ग सर्वोपरि परिपूर्ण होनेसे पुरुष कहा गया है । उसी भर्गको संसारके भयरूप अन्धकारसे बचानेके कारण शिव कहते हैं ॥ २१ ॥

सूर्यमण्डल, पुरुष, तथा किरण यह तीनों भर्ग पदके वाच्यार्थ हैं ॥ २२ ॥

---

(१) शुक्लयजुः । वाजसनेयसंहिता ।

संस्कृतम् ।

(१) वीर्य्यं वै भर्ग इति ॥ २३ ॥

(२) गायत्र्येव भर्गः तेजो वै गायत्री ॥२४॥

(३) तेजो वै ब्रह्मवर्चसम् । गायत्री तेजस्वी वर्चसी भवति ॥ २५ ॥

(४) स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः ॥ २६ ॥

भाषा ।

निश्चय करके बल भर्ग रूप है ॥ २३ ॥

निश्चय करके गायत्री ही भर्ग है तथा तेज ही गायत्री है ॥ २४ ॥

निश्चय करके तेज ही ब्रह्म तेज है गायत्री तेज-स्वरूप है ॥ २५ ॥

जो सब प्राणियोंमें आत्मा है और जो सूर्यमें है वह दोनों एक हैं ॥ २६ ॥

---

(१) शतपथब्रा० ५ । ४ । ५ । १ ।
(२) गोपथब्रा० रावण० पू० । ५ । १५ ।
(३) ऐतरेयब्रा० अ० १ । ख० १ । ब्रा० ५ ।
(४) तैत्तिरीयब्रा० ब्रह्मवल्ली ख० ८ ।

संस्कृतम् ।

(१) आदित्यान्तर्गतं यच्च ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम् ॥ हृदये सर्वभूतानां जीवभूतः स तिष्ठति ॥ २७ ॥

(२) तज्ज्योतिः परमं ब्रह्म भर्गस्तेजो यतस्स्मृतम् ॥ २८ ॥

भादीप्ताविति रूपं हि भ्रस्जपाकेऽथ तत्स्मृतम्।
ओषध्यादिकं पचति भ्राजृ दीप्तौ तथा भवेत् ॥
भर्गः स्याद्भ्राजत इति बहुलं छन्द ईरितम् २९॥

भाषा ।

आदित्यके अन्तर्गत जो सर्व ज्योतियोंमें उत्तम ज्योति है वही सब भूतोंके हृदयमें जीवरूपसे स्थित है ॥ २७ ॥

जिस कारणसे भर्ग तेजरूप है उसीसे वह तेज परब्रह्म है ॥ २८ ॥

दीप्त्यर्थक 'भा' धातुका रूप भर्ग है । जिससे औषध्यादिक परिपक्व होते हैं 'भ्रस्ज' धातुका रूप भर्ग है । दीप्त्यर्थक भ्राजृ धातुका रूप भर्ग है (और प्रकाशरूप भर्गको वेदमें बहुत प्रकारसे कथन किया है) ॥ २९ ॥

---

(१) बृ० यो० याज्ञ० ।

(२) अग्निपु० । अ० २१६ । श्लो ३; ४, ५, ९ ।

संस्कृतम् ।

शिवं केचित्पठंति स्म शक्तिरूपं पठंति च ।
केचित्सूर्यं केचिदग्निं वेदगा अग्निहोत्रिणः ३०
अग्न्यादिरूपी विष्णुर्हि वेदादौ ब्रह्म गीयते ।
तत्पदं परमं विष्णोर्देवस्य सवितुस्स्मृतम् ॥ ३१ ॥
(१) एतद्ब्रह्मैतदमृतमेतद्भर्गः ॥ ३२ ॥
(२) भर्गः। अद्वयानन्दलक्षणं सर्वजगदुपादानं परिपूर्णज्योतिरूपं बिम्बस्थानीयं ब्रह्म वाक्यार्थतया पर्यवसन्नम्, एतादृग्ब्राह्मं तद्रूपत्वेनेति शेषः ॥ ३३ ॥

भाषा ।

कोई भर्गको शिव कहते हैं, कोई शक्ति निरूपण करते हैं। कोई सूर्य और कोई वैदिक अग्निहोत्री अग्निरूप कहते हैं ॥ ३० ॥

अग्नि आदि रूपी विष्णु हैं, यह वेद आदिमें ब्रह्मरूपसे कथन कियागया है वह विष्णुदेव सविताका परमपद कहा गया है ॥ ३१ ॥

यही ब्रह्म है यही मोक्ष है यही भर्ग है ॥ ३२ ॥

भर्ग—अद्वय, आनन्दरूप, सम्पूर्णजगत्का आधार, परिपूर्ण ज्योतिस्वरूप बिम्बरूप ब्रह्मवाक्योंके अर्थरूपसे सम्पन्न ऐसा ब्रह्मसम्बधी तेज भर्गरूपसे कहा गया है ॥ ३३ ॥

(१) मैत्र्युप० ६ । ३५ ।
(२) निर्णयकल्पवल्ल्याख्य० सं० भा० ।

देवस्य ।

संस्कृतम् ।

(१) दिवु-क्रीडा–विजिगीषा-व्यवहार–द्युति-स्तुति–मोद–मद-स्वप्न–कान्ति–गतिषु, पचाद्यच् –इत्यच् प्रत्ययः।दीव्यति प्रकाशते चराचरञ्जगत् स देवः प्रकाशस्वरूपं वा ॥ १ ॥

(२) सर्वद्योतनात्मके आत्मनि परमेश्वरे अमरे ॥ २ ॥

भाषा ।

'दिवु' धातु क्रीडा, विजिगीषा (जीतनेकी इच्छा) व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, गति इन अर्थोंमें है । 'पचाद्यच्' इस सूत्रसे 'अच्' प्रत्यय करने पर 'देवता' बनता है । जो चर अचर जगत्को प्रकाश करे वह देव है अथवा जो प्रकाशस्वरूप है ॥ १ ॥

सर्व प्रकाशोंमें, आत्मामें, परमेश्वरमें, देवताओंमें 'देव' शब्द घटित होता है ॥ २ ॥

---

(१) धातु पाठ० । भरद्वाज० । सायन० । रावण० ।
(२) वाचस्पतिको० शब्दस्तोमको० महीधर० ।

संस्कृतम्।

(१) सर्वद्योतनात्मकाखण्डचिदेकरसम् ॥३॥

(२) देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्युस्थाने भवति वा ॥४॥

(३) दीव्यते क्रीड़ते यस्माद्रोचते द्योतते दिवि। तस्माद्देव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्वदैवतैः ॥५॥

भाषा।

सर्वका प्रकाशक, अखण्ड, चैतन्य, एकरस 'देव' का अर्थ है ॥४॥

'देव' शब्द दानमें, प्रकाश करनेमें, वा स्वलोकके अर्थमें है ॥४॥

जिसकारणसे स्वर्गमें क्रीडा करता है प्रकाश करता है इस कारण देव कहागया है और जिसकी सब देवता स्तुति करते हैं ॥५॥

---

(१) शंकरभा०।

(२) निरुक्त दैवतकाण्डे ७ अ० ४ पा० २ ख०।

(३) बृ० यो० याज्ञ० अ० ९।५४। विद्यारण्य०।

संस्कृतम् ।

(१) रज्ज्वाकाराद्दीव्यति प्रकाशयतीति देवः। ध्यातृहृदयारविन्दमध्ये क्रीडतीति देवः॥ दीव्यति नन्दतीति देवः। अखण्डानन्दैकरस इत्यर्थः ॥६ ॥

(२) सर्वभूतेष्वात्मतया द्योतते स्तूयते स्तुत्यैः सर्वत्र गच्छति तस्माद्देवः ।

(एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासःसाक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च–इति श्वेताश्वतरः। ११) ७ ॥

भाषा ।

रज्जु (रस्सी) के आकाशमें सर्पके भ्रमके सदृश अधिष्ठान रूपसे जो सबका प्रकाशक है वह देव कहा गया है । ध्यान करनेवालेके हृदयकमलमें क्रीडा करनेसे 'देव' कहा गया है। आनन्दित करता है इस कारण 'देव' शब्द अखण्डानन्द एक रसके अर्थमें है ॥ ६ ॥

सब भूतोंमें आत्मारूपसे प्रकाश करता है, स्तोत्रोंसे स्तुति किया जाता है सब जगह आत्मरूपसे प्राप्त है इस कारण देव कहा जाता है (एकही देव सर्वभूतोंमें गुह्य है सर्वव्यापी और सर्वभूतोंका अन्तरात्मा है । कर्मोंका स्वामी सर्व भूतोंके निवास स्थान, साक्षी, सबको चेतन करनेवाला केवल और निर्गुण है–श्वेताश्वतर ६।११)॥ ७॥

---

(१) सन्ध्याभा० ।

(२) शब्दकल्पद्रुमे ।

धीमहि ।

संस्कृतम् ।

(१) ध्यै=चिन्तायाम् । ध्यायतेर्लिङ्, बहुलं छन्दसीति सम्प्रसारणं (अ) व्यत्ययेनात्मनेपदम् । ध्यायामः । चिन्तयामः निगमनिरुक्तविधानरूपेण चक्षुषा निदिध्यासं तद्विषयं कुर्म इति ॥ १ ॥

(२) धीङ्=आधारे लिङि बहुलं छन्दसीति विकरणस्य लुका ध्यातृध्येयव्यापाराभिन्नत्वमेव ध्यानम् ॥ २ ॥

भाषा ।

"ध्यै" धातु चिन्तवन अर्थमें है ध्यायतेः लिङ्–बहुलं छन्दासि इस सूत्रसे सम्प्रसारण व्यत्ययसे करने पर आत्मनेपद हुआ. निगम, निरुक्त विधानरूप नेत्रसे चिन्तन करता हूँ अर्थात् तत् स्वरूपका ध्यान करता हूँ ॥ १ ॥

धीङ् धातु आधार अर्थमें है 'लिङि बहुलं छन्दासि' इस सूत्रसे विकरण का लोप हुआ ध्यान करनेवालेका ध्यान करने योग्य परमात्मासे अभेद होना ध्यान कहा जाता है ॥ २ ॥

---

(१) भरद्वाज गृह्यपरिशिष्ट । याज्ञवल्क्य० उव्वट० ।

(२) गृह्यपरिशिष्ट सायन० । विष्णु स० भा० ।

संस्कृतम् ।

(१) धीमहि–आत्मना आत्मरूपेण ध्यानं वयमकुर्म । ध्यानम् नाम " सर्वशरीरेषु चैतन्यैकतानता " ॥ ३ ॥

(२) ध्यानेन हेया वृत्तयः ॥ ४ ॥

(३) रागोपहितध्यानम् ॥ ५ ॥

(४) ध्यानेन लभते मोक्षं मोक्षेण लभते सुखम् । सुखेनानन्दवृद्धिः स्यादानन्दो ब्रह्मविग्रहः ॥ ६ ॥

भाषा ।

आत्मरूप करके आत्माका हम लोग ध्यान करते हैं । "सर्वभूतोंमें चैतन्यका फैलाव देखना" ध्यान कहलाता है ॥ ३ ॥

ध्यानसे वृत्तियोंका त्याग करना चाहिये ॥ ४ ॥

किसी वस्तुमें अनुरागसे युक्त होनेका नाम ध्यान है॥५॥

ध्यानसे मोक्ष और मोक्षसे सुख प्राप्त होता है, सुखसे आनन्दकी वृद्धि होती है और आनन्द ही ब्रह्ममूर्ति है ॥ ६ ॥

---

(१) मण्डलब्राह्मणोप० । १ । १

(२) योगसूत्रपा० २ । सू० ११ ।

(३) सांख्यसूत्रे अ० ३ । सू० ३० ।

(४) रुद्रयामलोत्तरतन्त्रे पट० २४ । १३९ । ३ ।

संस्कृतम् ।

(१) वयं ध्यायेम-ध्येयतया मनसा धारयेम वा वयम् उपासीमहि उपास्महे वा ॥ ७ ॥

(२) अहम्ब्रह्मेति धीमहि ॥ ८ ॥

(३) ब्रह्मैव साक्षिरूपमिति तल्लक्षणतया ध्यायितमुपपन्नमिति ॥ ९ ॥

ध्यायते अनया ध्यानं वा धीः । ध्यायतेः सम्प्रसारणं च इति धिय् सम्प्रसारणे हल इति दीर्घः ॥ १० ॥

भाषा ।

ध्येय पदार्थको हम लोग मनमें धारण करते हैं अथवा हम उपासना करते हैं ॥ ७ ॥

मैं ब्रह्मरूप हूँ ऐसा ध्यान करता हूँ ॥ ८ ॥

ब्रह्म ही साक्षीरूप है इस लक्षणसे ध्यान करनेवालेको ध्यान करना युक्त है ॥ ९ ॥

जिससे ध्यान किया जाय उसको ध्यान व धी कहते हैं "ध्यायतेः सम्प्रसारणं च" इस सूत्रसे ध्यके यकारको इ होगया तो धि बना फिर "हलः" इस सूत्रसे दीर्घ होगया इस प्रकार धी रूप सिद्ध होता है ॥ १० ॥

---

(१) स्कन्दपु० । भारद्वाज० । सायन० ।

(२) अग्निपु० अ० २१६ । १८ ।

(३) निर्णयकल्पवल्ल्याख्य सं० भा० ।

धियः ।

संस्कृतम् ।

(१) बुद्धयो वै धियः ॥ १ ॥

(२) धियो धारणवत्यो बुद्धयः (धीर्धारणावती मेधेत्यमरः) ॥ २ ॥

(३) धर्मादिविषया बुद्धिः ॥ ३ ॥

(४) कर्माणि धिय इति ॥ ४ ॥

(५) धीशब्दो बुद्धिवचनः, कर्मवचनो, वा वाग्वचनश्च ॥ ५ ॥

भाषा ।

बुद्धियां निश्चय करके 'धियः' हैं ॥ १ ॥

'धियः' धारण करनेवाली बुद्धियाँ हैं, (धी धारण करनेवाली बुद्धिको कहते हैं, यह अमरकोषका वचन है) ॥ २ ॥

धर्मादि विषयोंवाली बुद्धिको धी कहते हैं ॥ ३ ॥

कर्मोंको बुद्धि कहते हैं ॥ ४ ॥

धीशब्द बुद्धिवाची कर्मवाची और वाक्वाची है ॥ ५ ॥

---

(१) मैत्र्युप० ६ । ७ । भरद्वाज० ।

(२) विष्णु० भा० ।

(३) याज्ञ० । सायन० ।

(४) अथर्वण० ।

(५) उव्वट० । सायन० ।

संस्कृतम् ।

(१) कर्मयज्ञसहस्रेभ्यस्तपोयज्ञो विशिष्यते। तपोयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते ॥ जपयज्ञसहस्रेभ्यो ध्यानयज्ञो विशिष्यते। ध्यानयज्ञात्परो नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम् ॥ ६॥

यः

(२) यः शब्दश्च यदित्यर्थे लिङ्गव्यत्ययतो भवेत् ॥ १ ॥

(३) य इति लिङ्गव्यत्ययः यद्भर्गः यः भर्गो वा ॥ २ ॥

भाषा ।

हजारों कर्मयज्ञसे तपयज्ञ विशेष हैं और हजारों तपयज्ञसे जपयज्ञ विशेष हैं और हजारों जपयज्ञसे ध्यानयज्ञ विशेष हैं–ध्यान यज्ञसे परे कोई यज्ञ नहीं है ध्यान ज्ञानका साधन है ॥ ६ ॥

लिङ्गव्यत्ययसे 'यः' शब्द 'यत्' होजाता है ॥ १ ॥

'यः' शब्द लिङ्ग व्यत्ययसे 'यद्भर्गः' बना वा 'यः' भर्गः बना ॥ २ ॥

---

(१) लिंगपुराणपूर्वार्द्धे अध्याय७९श्लो० १३–१४

(२) लौहित्यनीलकण्ठ० । भरद्वाज० उव्वट० ।

(३) यो० याज्ञ० भरद्वाज० सायन० । महीधर० ।

संस्कृतम् ।

(१) यत्सत्यज्ञानादिलक्षणम् ॥ ३ ॥

(२) यः प्रत्यग्रूपः ॥ ४ ॥

(३) यः सविता देवः ॥ ५ ॥

नः

(४) नः अस्माकम् ॥ १ ॥

(५) नः अस्मदीयाः ॥ २ ॥

भाषा ।

जो सत्यज्ञानादिरूप ब्रह्म है ॥ ३ ॥
जो जीवात्मरूप है ॥ ४ ॥
जो सविता देव है ॥ ५ ॥
'नः' का अर्थ हमारा है ॥ १ ॥
'नः' का अर्थ हम लोगोंका है ॥ २ ॥

---

(१) विद्यारण्यस्वा० ।
(२) निर्णयकल्पवल्ल्याख्यसं० भा०
(३) सायन० महीधर०
(४) सायन० महीधर०
(५) तारानाथतर्कवाच०

प्रचोदयात् ।

संस्कृतम् ।

(१) चुद्-प्रेरणे प्रकर्षेण चोदयति प्रेरयति॥१॥

(२)प्रेरयति, अयमाशयः-सर्वस्याश्चेतनाया अचेतनचेतनोऽपि भगवांश्चात्र प्रतिप्रेरयति॥२॥

(३) योजयति धर्मार्थकाममोक्षेष्वस्मदादीनां बुद्धिम् ॥ ३ ॥

भाषा ।

'चुद्' धातु 'प्रेरणा' अर्थमें है । अच्छीतरहसे प्रेरणा करनेसे 'प्रचोदयात्' हुआ ॥ १ ॥

'प्रेरयति' का यह आशय है कि सब अचेतनोंके अचैतन्यको चैतन्य करनेवाला भगवान् यहां प्रेरणा करता है ॥ २ ॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्षमें हम लोगोंकी बुद्धिको युक्त करता है ॥ ३ ॥

---

(१) सायन० । महीधर० यो० याज्ञ० । उव्वट० ।

(२) विष्णु० भा०

(३) भारद्वाज० योगियाज्ञ० ।

संस्कृतम् ।

(१) प्रचोदयात्=प्रकर्षेण प्रेरयति सकलं कर्मानुष्ठानप्रवणा दुष्कर्मविमुखाश्चास्मद्बुद्धीः करोति । अन्तःकरणवृत्तीः प्रकाशयति वा ॥ ४ ॥

(२) प्रचोदयात् प्रेरयेत् ॥ ५ ॥

बृ०यो०याज्ञवल्क्योक्तगायत्रीमन्त्रार्थः ।

तच्छब्देन तु यच्छब्दो बोद्धव्यः सततं बुधैः ।
उदाहृते तु यच्छब्दे तच्छब्द उदितो भवेत् ॥१॥

भाषा ।

प्रचोदयात् = अच्छी तरहसे सम्पूर्ण कर्मानुष्ठानके सन्मुख और दुष्कर्मसे विमुख हमारी बुद्धिको करता है अथवा अन्तःकरणकी वृत्तियोंको प्रकाश करता है ॥ ४ ॥

प्रेरणा करै ॥ ५ ॥

'तत्' शब्द जहां हो वहां यत् शब्द भी बुद्धिमानोंको सदैव जाननेयोग्य है । और जहां पर 'यत्' शब्द कहा गया है वहां पर 'तत्' शब्दका भी बोध होता है ॥ १ ॥

---

(१) तैत्तिरीय–सन्ध्या भा० गु० ४ पृ० ५२, ५३.

संस्कृतम्।

सविता सर्वभूतानां सर्वभावांश्च सूयते।
सवनात्प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते ॥ २ ॥
वरेण्यं वरणीयश्च संसारभयभीरुभिः।
आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वा मुमुक्षुभिः॥३॥
भ्रस्ज पाके भवेद्धातुर्यस्मात्पाचयते ह्यसौ।
भ्राजते दीप्यते यस्माज्जगदन्ते हरत्यपि ॥ ४ ॥
दीव्यते क्रीडते यस्माद्रोचते द्योतते दिवि।
तस्माद्देव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्वदैवतैः ॥ ५ ॥

भाषा।

सविता सर्व भूतोंके सब भावोंको उत्पन्न करता है। उत्पन्न तथा प्रेरणा करनेसे सविता नाम कहा जाता है ॥ २ ॥

संसारके भयसे डरे हुए जनों और मोक्षकी इच्छा-वालोंसे सूर्यमण्डलके अन्तर्गत जो भर्गरूप तेज है वह प्रार्थना (भावना) करनेके योग्य है ॥ ३ ॥

भ्रस्ज धातुका अर्थ पकाना है जिस कारणसे सबको पकाता है प्रकाशित करता है तथा अन्तमें संसारका नाश करता है इससे भर्ग शब्द हुआ ॥ ४ ॥

जो स्वर्ग लोकमें जिस कारणसे क्रीडा और प्रकाश करता है तिस कारणसे देव शब्द कहागया है जिसकी स्तुति देवता लोग करते हैं ॥ ५ ॥

संस्कृतम् ।

देवस्य सवितुर्यच्च भर्गमन्तर्गतं विभुम् ।
ब्रह्मवादिन एवाहुर्वरेण्यं तच्च धीमहि ॥ ६ ॥
चिन्तयामो वयम्भर्गों धियो यो नः प्रचोदयात् ।
धर्म्मार्थकाममोक्षेषु बुद्धिवृत्तीः पुनःपुनः ॥ ७ ॥
बुद्धेर्बोधयिता यस्तु चिदात्मा पुरुषो विराट् ।
सवितुस्तद्वरेण्यन्तु सत्यधर्माणमीश्वरम् ॥ ८ ॥
हिरण्यवर्णं पुरुषं ध्यायेम विष्णुसंज्ञकम् ।
विशनात्सर्वभूतानां विष्णुरित्यभिधीयते ॥ ९ ॥

भाषा ।

सविता देवके अन्तर्गत जो भर्गरूप तेज व्यापक है उसी तेजको ब्रह्मज्ञानी लोग वरेण्य कहते हैं, तिसका हम ध्यान करते हैं ॥ ६ ॥

जो भर्ग-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, में बार बार बुद्धिकी वृत्ति प्रेरणा करता है उसका हम चिन्तन करते हैं ॥ ७ ॥

बुद्धिको बोध करानेवाला जो चैतन्यरूप आत्मा पुरुष विराट् है वही सविता देवका सत्यधर्मवाला ईश्वररूप तेज प्रार्थनीय है ॥ ८ ॥

उस हिरण्यवर्ण विष्णुरूप पुरुषका हम ध्यान करते हैं । सब भूतोंमें प्रवेश करनेसे विष्णु यह नाम कहा गया है ॥ ९ ॥

संस्कृतम् ।

ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्तमेवं हि व्याप्य तिष्ठति ।
पाषाणमणिधातूनां तेजोरूपेण संस्थितः ॥ १ ॥
वृक्षौषधितृणानां च रसरूपेण तिष्ठति ।
तन्मात्रसूतो भूतानां विश्वरूपेण संस्थितः ॥ ११ ॥
आदित्ये हृदये चैवं योऽग्नौ व्योम्नि तथापरे ।
एक एव भवेदात्मा पंचधावस्थितस्तु सः ॥ १२ ॥
एवं यो वेत्ति आत्मानमेकधा सम्प्रतिष्ठितम् ।
ज्ञात्वा चोपास्यते सम्यक् सोऽमृतत्वाय कल्पते १३

भाषा ।

ब्रह्मासे तृण पर्यन्त इसी प्रकार व्यापक होकर स्थित है। पत्थर, मणि, तथा सर्वधातुओंमें वह तेजरूपसे स्थित है ॥ १० ॥

वृक्ष, औषधि, और तृणोंमें रसरूपसे और सर्व भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित है इस प्रकार विश्वरूपसे स्थित है ॥ ११ ॥

सूर्य्य, हृदय, अग्नि, आकाश तथा ईश्वरमें एकही आत्मा पांच प्रकारसे स्थित है ॥ १२ ॥

इस प्रकार जो पुरुष आत्माको सबमें एक रूपसे स्थित जानता है और जानकर अच्छी तरह उपासना करता है वह मुक्त होजाता है ॥ १३ ॥

भरद्वाजस्मृत्युक्तगायत्रीभाष्यम् ।

संस्कृतम् ।

पदानि दश मन्त्रस्य तदादीनि यथाक्रमात् ।
पदं प्रत्यर्थनिष्पत्तिः स्पष्टन्तु क्रियतेऽत्र हि ॥ १ ॥

तदिति द्वितीयैकवचनम् । अनेनाखिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयकारणभूतमुपनिषदि कथ्यमानं निरुपमं तेजः सूर्यमण्डलाभिध्येयं परब्रह्माभिधीयते ॥ सवितुरिति षष्ठ्येकवचनं,षुञ् प्राणिप्रसवे, इत्यस्य धातोरेतद्रूपम् सर्वस्य भूतजातस्य प्रसवितुरित्यर्थः ॥

भाषा ।

मन्त्रमें 'तत्' आदि क्रमसे दस पद हैं प्रत्येक पदका अर्थ यहां स्पष्ट करके कहता हूं ॥ १ ॥

'तत्' यह द्वितीयाका एकवचन है इससे अखिल जगत्की उत्पत्ति स्थिति लयका कारणभूत उपनिषदोंमें कथित जो उपमारहित तेज सूर्यमण्डलमें स्थित परब्रह्म है, वह कहा गया है ॥ सवितुः यह षष्ठीका एकवचन है 'षुञ्' धातुका अर्थ प्राणियोंके उत्पत्ति करनेमें है इस धातुका यह रूप है । सम्पूर्ण प्राणियोंके उत्पन्न करनेवालेका यह नाम है ॥

संस्कृतम् ।

वरेण्यं वरणीयं प्रार्थनीयम्, नियमादिभिरपगतकल्मषैः सततं ध्येयम् ॥ भर्गः ॥ भञ्जो आमर्दने–भृज् भर्जने, इत्येतयोर्धात्वोर्भजतां पापभर्जनहेतुभूतमित्यर्थः । भा दीप्तावित्यस्य धातोर्वा भर्गः तेज इत्यर्थः ॥ देवस्य वृष्टिदानादिगुणयुक्तस्य निरतिशयस्येत्यर्थः । दीप्यते प्रकाशत्वात् ॥ धीमहि ध्यै-चिन्तायाम्, निगमनिरुक्तविद्यारूपेण चक्षुषा योऽसावादित्ये हिरण्मयः पुरुषः सोऽहमिति चिन्तयामि ।

भाषा ।

वरेण्यं वरणीय प्रार्थना करनेयोग्य हैं पापरहित पुरुषोंसे नियमपूर्वक सदैव ध्यानके योग्य है ॥ भर्गः=भञ्जो आमर्दने 'भृज् भर्जने' इन दोनों धातुओंसे भजन करनेवालोंके पापनाश करनेका हेतु भर्ग है अथवा 'भा' धातु दीप्ति अर्थमें है इस धातुसे 'भर्ग' (तेज) बना । देवस्य=वृष्टिदानादि गुणयुक्त निरतिशय (आनन्द) रूपका ऐसा अर्थ है । प्रकाशरूप होनेसे 'दीप्यते' शब्दका प्रयोग हुआ । धीमहि=ध्यै धातु चिन्तन अर्थमें है इससे निगम निरुक्त विद्यारूपी नेत्रोंसे जो यह आदित्यमें हिरण्मय पुरुष है वह मैं हूँ ऐसा चिन्तन करता हूँ ।

संस्कृतम् ।

धियँः इति द्वितीयाबहुवचनम् ॥ यँ इति छान्दसत्वाल्लिङ्गव्यत्ययः । यत्तेजः सवितुर्देवस्य वरेण्यमस्माभिः अभिध्यातं भर्गो जपतां पापभञ्जनहेतुभूतं धीमहि उपास्महे । तत्तेजो नोऽस्माकं धियो बुद्धीः श्रेयस्करेषु कर्मसु प्रचोदयात् प्रेरयेदित्यर्थः। इति ॥

अगस्त्योक्तश्लोकः ।

यो देवः सविताऽस्माकं धियो धर्मादिगोचराः ।
प्रेरयेत्तस्य यद्भर्गस्तं वरेण्यमुपास्महे ॥ १ ॥

भाषा ।

धियँः=यह द्वितीयाका बहुवचन है यँः=(यत्) छन्द होनेके कारण लिङ्ग व्यत्यय है, जो सविता देवका तेज (भर्ग) हम सबसे प्रार्थनीय है और जप करनेवालोंके पापके नाश करनेका हेतु है उस तेजकी हम उपासना करते हैं । वह तेज हमें लोगोंकी बुद्धिको उत्तम कर्मोंके करनेमें प्रेरणा करै । इति ।

जो सविता देव हमारी बुद्धियोंको धर्मादिमें लगाता है तिस सविता देवका जो प्रार्थनीय भर्गरूप तेज है उसकी हम उपासना करते हैं ॥ १ ॥

बृहत्पाराशरोक्तश्लोकः ।

संस्कृतम् ।

देवस्य सवितुर्भर्गो वरणीयश्च धीमहि ।
तदस्माकं धियो यस्तु ब्रह्मत्वे च प्रचोदयात् ॥ १ ॥

स्कान्दीयसूतसंहितोक्तमन्त्रार्थः ।

यो नोऽस्माकं धियश्चित्तान्यन्तर्यामिस्वरूपतः ।
प्रचोदयात्प्रेरयेच्च तस्य देवस्य सुव्रताः ॥ १ ॥
दीप्तस्य सर्वजन्तूनां प्रत्यक्षस्य स्वभावतः ।
सवितुस्स्वात्मभूतन्तु वरेण्यं सर्वजन्तुभिः ॥ २ ॥
भजनीयं द्विजा भर्गस्तेजश्चैतन्यलक्षणम् ।
तच्छब्दवाच्यं सर्वज्ञं जगत्सर्गादिकारणम् ॥ ३ ॥

भाषा ।

सवितादेवका जो भर्गरूप तेज वरणीय है उसका हम ध्यान करते हैं सो हमारी बुद्धिको ब्रह्मरूपमें प्रेरणा करै॥१॥

हे सुव्रतद्विजलोगो ! अन्तर्यामी रूप हम सबके चित्तोंको प्रेरणा करता है तिस ॥ १ ॥

प्रकाशमान्, सर्वजन्तुओंमें प्रत्यक्षरूपसे स्थित सविता-रूप परमेश्वरका स्वरूप सर्वजन्तु करके ॥ २ ॥

भजनीय, जो भर्ग तेज, चैतन्यरूप, तत् शब्दका वाच्य, सर्वज्ञ जगत्के उत्पत्तिका आदि कारण ॥ ३ ॥

संस्कृतम् ।

स्वमायाशक्तिसंभिन्नं शिवरुद्रादिसंज्ञितम् ।
आदित्यदेवतायास्तु प्रेरकं परमेश्वरम् ॥ ४ ॥
आदित्येन परिज्ञातं वयं धीमह्युपास्महे ।
सावित्र्याः कथितोह्यर्थः संग्राहेण मयाऽऽदरात्॥५॥

आग्नेयनिर्वाणतंत्रोक्तमन्त्रार्थः ।

त्र्यक्षरात्मकतारेण परेशः प्रतिपाद्यते ।
पाता हर्ता च संस्रष्टा यो देवः प्रकृतेः परः ॥ १ ॥

भाषा ।

स्वमायाशक्तिसे शिवरुद्रादि भिन्न भिन्न रूप, सूर्य नारायणका प्रेरक, परमेश्वर ॥ ४ ॥

सूर्यरूपसे ज्ञात, उसकी हम उपासना करते हैं संक्षेपसे गायत्रीका अर्थ मैंने आदरपूर्वक कथन किया है ॥ ५ ॥

त्र्यक्षरात्मक तारक प्रणवरूपसे परमात्मा प्रतिपादित है जो देव प्रकृतिके परे है वही पालन करनेवाला नाश करनेवाला और उत्पन्न करनेवाला है ॥ १ ॥

संस्कृतम् ।

असौ देवस्त्रिलोकात्मा त्रिगुणं व्याप्य तिष्ठति ।
अतो विश्वमयं ब्रह्म वाच्यं व्याहृतिभिस्त्रिभिः॥२॥
तारव्याहृतिवाच्यो यः सावित्र्या ज्ञेय एव सः ।
जगद्रूपस्य सवितुः संस्रष्टुर्दीव्यते विभोः ॥३॥
अन्तर्गतं महद्वर्चो वरणीयं यतात्मभिः ।
ध्यायेत्तत्परं सत्यं सर्वव्यापि सनातनम् ॥ ४ ॥
यो भर्गस्सर्वसाक्षी च मनोबुद्धीन्द्रियाणि नः ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु प्रेरयेद्विनियोजयेत् ॥ ५ ॥

भाषा ।

वही परमेश्वर तीनों लोकोंका आत्मा तीनों गुणोंमें व्यापक होकर स्थित है इस कारण विश्वमय ब्रह्म तीनों व्याहृतियोंका वाच्य है ॥ २ ॥

प्रणव व्याहृतिका जो वाच्य है वही गायत्री मंत्रसे ज्ञेय (जाननेयोग्य) है। जगत्रूप, सृष्टिकर्ता, सनातन ब्रह्मका प्रकाश करता है ॥ ३ ॥

अन्तर्गत जो महान् तेज है वह इन्द्रियजित् पुरुषोंसे वरणीय है तिस परम सत्य, सर्वव्यापी, सनातन ब्रह्मका ध्यान करे ॥ ४ ॥

जो भर्ग सर्वसृष्टिका साक्षी है वह हमारे मन बुद्धि, इन्द्रियोंको धर्म, अर्थ, काम, मोक्षमें युक्त करे ॥ ५ ॥

उव्वटभाष्यम् ।

संस्कृतम् ।

तदिति षष्ठ्या विपरिणम्यते तस्य सवितुः सर्वस्य प्रसवदातुः आदित्यान्तरपुरुषस्य देवस्य हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्नस्य वा विज्ञानानन्दस्वभावस्य वा ब्रह्मणो वरेण्यं वरणीयं भर्गः भर्गशब्दो वीर्यवचनः वरुणाद्ध वा अभिषेचनाद्भर्गोपचक्राम वीर्यं वै भर्ग इति श्रुतिः । तेन हि पापं भृञ्जन्ति दहन्ति भृजी भर्जने अथवा भर्गस्तेजोवचनः यद्वा मण्डलं पुरुषो रश्मय इत्येतत्त्रितयमभिप्रेयते देवस्य दानादिगुणयुक्तस्य

भाषा ।

तत् शब्द षष्ठ्यर्थमें है तिस सविताका अर्थात् सबके उत्पन्न करनेवाले सूर्यके अन्तर्गत पुरुष देवका अर्थात् हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्न विज्ञानानन्दस्वरूप ब्रह्म का वरणीय रूप भर्ग है भर्ग शब्द वीर्यवाची है भर्गका प्रभव वरुण अथवा। अभिषेचनसे हुआ । निश्चय करके वीर्यही भर्ग है यह श्रुति है तिससे पाप नष्ट होते हैं, भृजीधातु भर्जनार्थक होनेसे भर्ग तेजोवाची है अथवा मण्डल, पुरुष, और किरण यह तीनों भर्गशब्दसे कहेगये हैं; देव दानादिगुणयुक्तका हम

संस्कृतम् ।

धीमहि । ध्यै चिन्तायाम्,अस्य च्छान्दसं सम्प्रसारणम्, ध्यायामः चिन्तयामः निदिध्यासं तद्विषयं कुर्म इति यावत् धियो यो नः धीशब्दो बुद्धिवचनः कर्मवचनो वा वाग्वचनश्च बुद्धीः कर्माणि वा वाचो वा यः सविता नोऽस्माकं प्रचोदयात् । यस्सविता देवः नोऽस्माकं धियः कर्माणि धर्मादिविषया वा बुद्धीः "प्रचोदयात्" प्रेरयेत् "तत्" तस्य-चुद सञ्चोदने प्रकर्षेण चोदयति प्रेरयति तस्य सवितुः सम्बन्धि वीर्यं तेजो वा ध्यायाम इति

भाषा ।

ध्यान करते हैं'ध्यै' धातु चिन्तन अर्थमें है, वैदिक प्रयोग होनेसे इसका सम्प्रसारण है ध्यान करते हैं (चिन्तन करते हैं) अर्थात् ब्रह्मविषयका निदिध्यासन करते हैं । 'धियो यो नः' यहां धीशब्द बुद्धिवाची वा कर्मवाची वा वाग्वाची है इस लिये जो सूर्य हमारी बुद्धि, कर्म वा वाणीकी प्रेरणा करता है । जो सविता देव हमारी बुद्धिको धर्मादि कर्मोंमें प्रेरणा करता है तिसके । 'चुद' धातु-प्रेरणार्थक है जो अच्छी तरहसे प्रेरणा करे तिस सविता देव सम्बन्धी वीर्य वा तेज (भर्ग) का

संस्कृतम् ।

सम्बन्धः वाक्यभेदेन वा योजना। तत्सवितुर्वरणीयं वीर्यं तेजो वा देवस्य ध्यायामः यश्च बुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयत्यस्माकं तं च ध्यायामः स च सवितैव भवति । लिङ्गव्यत्ययेन वा योजना, तत्सवितुर्वरणीयं भर्गो देवस्य ध्यायामः धियो यद्भर्गः अस्माकं प्रेरयति ॥

सायनभाष्यम् ।

सर्वासु श्रुतिषु प्रसिद्धस्य देवस्य द्योतमानस्य सवितुः । सर्वान्तर्यामितया प्रेरकस्य जगत्स्रष्टुः

भाषा ।

हम ध्यान करते हैं यह सम्बन्ध है । अब वाक्यभेद करके योजना करते हैं उस सविता देवके वरणीय वीर्य वा तेजका हम ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धिको प्रेरणा करता है जो भर्ग हमको प्रेरणा करता है तिसका हम ध्यान करते हैं वह भर्ग सविताही है । अथवा लिङ्ग व्यत्यय करके यह योजना है तिस सविता देवके वरणीय भर्गका हम ध्यान करते हैं जो भर्ग हमारी बुद्धिको प्रेरणा करता है।

सबश्रुतियोंमें प्रसिद्ध, प्रकाशमान, सर्व अन्तर्यामी, रूपसे प्रेरक, जगत्की रचना करनेवाला, सवितारूप,

संस्कृतम् ।

परमेश्वरस्य आत्मभूतं वरेण्यं सर्वरूपास्यतया ज्ञेयतया च सम्भजनीयम् ॥ भर्गः—अविद्यातत्कार्ययोर्भर्जनाद्भर्गः स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मकं तेजः धीमहि तद्योऽहं सोऽसौ,योऽसौ सोऽहमिति वयं ध्यायेम॥ (यद्वा) तदिति भर्गो विशेषणम्, सवितुर्देवस्य तत्तादृशं भर्गः धीमहि किं तदित्यपेक्षायामाह । य इति लिङ्गव्यत्ययः यद्भर्गो धियः प्रचोदयादिति तद्ध्यायेमेति समन्वयः ॥

भाषा ।

परमेश्वरका आत्मरूप (वरेण्य)सब करके उपासनीय जानने और भजन करने योग्य भर्ग है अज्ञान और तिसके कार्यको जलानेके कारण भर्ग स्वयं ज्योति परब्रह्मरूपात्मक तेज है । तिसका ध्यान करते हैं जो मैं हूँ सो वह है जो वह है सो मैं हूँ इस प्रकार हम ध्यान करते हैं । अथवा 'तत्' यह भर्गका विशेषण है सविता देवके तिस परब्रह्मके सदृश भर्गका ध्यान करता हूँ तिस किस इसको कहते हैं 'य' 'यह' लिङ्ग व्यत्यय है जो भर्ग हमारी बुद्धिको प्रेरणा करताहै तिस भर्गका ध्यान करते हैं यह समन्वय है ।

संस्कृतम् ।

(यद्वा) यः सविता सूर्यो धियः कर्माणि प्रचोदयात् प्रेरयति तस्य सवितुः सर्वस्य प्रसवितुर्देवस्य द्योतमानस्य सूर्यस्य तत् सर्वैर्दृश्यमानतया प्रसिद्धं, वरेण्यं सर्वैः भजनीयं भर्गः पापानां तापकं तेजोमण्डलं, धीमहि ध्येयतया मनसा धारयेम ।

रावणभाष्यम् ।

तत् तस्य भर्गस्तेजः धीमहि ध्यायेम चिन्तयामः अत्र यद्यपि तदितिपदं भर्गो विशेषणं नास्ति तथापि तच्छब्दप्रयोगादेव यच्छब्दप्रयोगो लभ्यते तस्य

भाषा ।

जो सूर्य कर्मोंको प्रेरणा करते हैं उस सविता (सर्वोत्पादक) देव (प्रकाशमान) सूर्यके तत् (वह) सर्वलोकसे प्रत्यक्ष होनेके कारण प्रसिद्ध वरेण्य (सर्वजनोंसे उपासना करने योग्य) भर्ग (पापोंके नाश करनेवाला) तेजोमण्डलको ध्येय रूपसे मनसे हम धारण करते हैं ।

तिस भर्गतेजका मैं चिन्तन करता हूँ यहांपर इस मन्त्रमें तत् पद भर्गका विशेषण नहीं है तिसपर भी तत् शब्दके प्रयोगसे यत् शब्दकी उपलब्धि होती है । तिसका

संस्कृतम् ।

कस्य "सवितुः" सर्वभावानां प्रसवितुः । पुनः किंभूतस्य "देवस्य" दीप्तिक्रीडादियुक्तस्य तं कं यो भर्गो नोऽस्माकं धियो बुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयतीत्यर्थः । तदिह भर्गशब्देन बहुविधमाहात्म्यमुक्तम् । सवितृमण्डलगतादित्यदेवतास्वपुरुष उच्यते ॥ अत्र यद्यपि सवितुर्भर्ग इति सवितृभर्गयोर्भिन्नता गायत्रीमन्त्रे प्रतीयते तथापि परमार्थचिन्तायां सवितृभर्गयोर्भेदो न विद्यते एव स एव सविता स एव भर्गः सवितृभर्गयोः अद्वैतमेव तथा च राहोः

भाषा ।

किसका सविताका = सब भावोंके उत्पन्न करनेवालेका फिर कैसा है वह सविता क्रीडादियुक्त है । सो कौन जो भर्ग हमारी बुद्धिको प्रेरणा करता है यहां तिस भर्ग शब्दसे बहुत प्रकारका माहात्म्य कहा गया है वह भर्ग सूर्य मण्डलमें (व्यापक) पुरुष कहा गया है ।

यद्यपि इस गायत्री मन्त्रमें सविता और भर्गकी भिन्नता प्रतीत होती है तथापि परमार्थ विचारमें सविता और भर्गमें भेद नहीं है वही सविता है वही भर्ग है सविता और भर्ग एकरूप है जैसा कि राहोः शिरः (राहुका शिर) अर्थात् राहुकी शिर है यहां षष्ठी

संस्कृतम् ।

।रा इतिवत् षष्ठी त्वभेदसाधिका पुनरपि किंभूतं भर्गः वरेण्यं प्रवरणीयं प्रार्थनीयम्, जन्ममृत्युदुःख नाशाय ध्यानेन उपासनीयमित्यर्थः । एवं गायत्र्याः स्तस्य च माहात्म्यमुपवर्ण्य पुनस्तस्यैव महाप्रभावत्वं महाव्याहृतिभिर्विशेषणीभूताभिरभिधीयते तद्यथा किंभूतं भर्गः भूरादि व्याप्य तिष्ठन्तमिति शेषः । तथा च भूरादित्रैलोक्यप्रकाशकम् । भूर्भूमिलोकः भुवः भुवर्लोकः अन्तरिक्षं, स्वः स्वर्लोकः

भाषा ।

विभक्ति अभेद सम्बन्ध साधिका हुई है वैसाही यहां भी है । (तथा राहुके शिरके समान षष्ठी विभक्ति भेदका साधक नहीं) । फिर भी किसप्रकारका वह भर्ग है । वरणीय है अर्थात् प्रार्थनीय है जन्म, मृत्युरूप दुःखोंके नाशके लिये ध्यान पूर्वक उपासना करनेयोग्य है । इस प्रकारसे गायत्री मन्त्रका माहात्म्य वर्णन करके फिर तिसीका महाप्रभाव महाव्याहृतिद्वारा विशेषरूपसे कहते हैं किस प्रकारका वह भर्ग है भू आदि लोकोंमें व्यापक होकर स्थित है तथा भू आदि तीनों लोकोंका प्रकाशक है 'भूः' भूमिलोक 'भुवः' अन्तरिक्षलोक, 'स्वः' स्वर्गलोक

संस्कृतम् ।

एवमुपर्युपरि क्रमेणावस्थितान् लोकानभिव्याप्या-
वतिष्ठमानोऽसौ भर्गः एतांस्त्रींल्लोकानेव प्रदीप-
वत् प्रकाशयतीत्यर्थः ॥

महीधरभाष्यम् ।

तदिति षष्ठ्यर्थे तस्य देवस्य द्योतनात्मकस्य सवितुः प्रेरकस्यान्तर्यामिणो विज्ञानानन्दस्वभावस्य हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्नस्य वा आदित्यान्तरपुरुषस्य, वा ब्रह्मणो वरेण्यं वरणीयं सर्वैः प्रार्थनीयं भर्गः सर्वपापानां सर्वसंसारस्य च भर्जनसमर्थं तेजः

भाषा ।

इसीप्रकार क्रमसे ऊपर ऊपर स्थित तीनों लोकोंमें परिपूर्ण होकर भर्ग स्थित है अर्थात् इन तीनों लोकोंका प्रदीपवत् प्रकाशक है ।

'तत्' यह षष्ठी अर्थमें है तिस प्रकाशमान प्रेरक अन्तर्यामी विज्ञानानन्दस्वरूप हिरण्यगर्भोपाधिमें स्थित सूर्य मण्डलके अन्तर्गत पुरुषरूप ब्रह्मका वरणीय नाम सबसे प्रार्थनीय जो भर्ग अर्थात् सर्व पापों तथा सर्व संसारके नाश

संस्कृतम् ।

सत्यज्ञानानन्दवेदान्तप्रतिपाद्यं वयं धीमहि ध्यायामः, छान्दसं सम्प्रसारणम्, यद्वा मण्डलं पुरुषो रश्मय इति त्रयं भर्गःशब्दवाच्यम्, भर्गो वीर्यं वा वरुणाद्भवा अभिषिचानाद्भर्गोऽपचक्राम वीर्यं वै भर्ग इति श्रुतेः तस्य कस्य यस्तविता नोऽस्माकं धियः बुद्धीः कर्माणि वा प्रचोदयात् वा प्रकर्षेण चोदयति प्रेरयति सत्कर्मानुष्ठानाय । यद्वा वाक्यभेदेन योजना–सवितुर्देवस्य वरेण्यं भर्गो ध्यायामः यश्च नो बुद्धीः प्रेरयति तं च ध्यायामः स

भाषा ।

करनेमें समर्थ वेदान्तद्वारा वर्णित सत्यज्ञानानन्दस्वरूप तेजका हम ध्यान करते हैं वैदिकप्रयोग होनेसे सम्प्रसारण है अथवा मण्डल, पुरुष, किरण ये तीनों भर्गशब्दके वाच्य हैं अथवा भर्ग वीर्य्यरूप है (वा वरुणरूपसे सर्वको सिञ्चन करनेसे भर्ग वीर्यको कहते हैं–"निश्चयकरके भर्ग वीर्य है" ऐसी श्रुति है) तिसका किसका ? जो सविता हमारी बुद्धि वा कर्मोंमें प्रेरणा करता है अथवा सत्कर्मोंके अनुष्ठानमें भलीभांति लगाता है अथवा वाक्यभेदसे योजना करते हैं । उस सविता देवके वरणीय भर्गका हम ध्यान करते हैं जो सविता हमारी बुद्धिकी प्रेरणा करता है तिसका

संस्कृतम् ।

च सवितैव । लिङ्गव्यत्ययेन वा योजना, सवितुर्देवस्य तद्भर्गो धीमहि यो यद्भर्गो नो बुद्धीः प्रेरयति॥

श्रीमच्छङ्करभाष्यम् ।

तत्र शुद्धगायत्री प्रत्यग्ब्रह्मैक्यबोधिका । धियो यो नः प्रचोदयादिति नोऽस्माकं धियो बुद्धीः यः प्रचोदयात् प्रेरयेदिति सर्वबुद्धिसंज्ञांतःकरणप्रकाशकसर्वसाक्षी प्रत्यगात्मेत्युच्यते । तस्य प्रचोदयात्शब्दनिर्दिष्टस्यात्मनः स्वरूपभूतं परं ब्रह्म तत् सवितुरित्यादिपदैर्निर्दिश्यते ।

भाषा ।

हम ध्यान करते हैं वह सविता ही है । लिङ्गव्यत्यय करके योजना करते हैं । सविता देवके तिस भर्गका हम ध्यान करते हैं जो भर्ग हमारी बुद्धिकी प्रेरणा करता है ॥

तहां शुद्ध गायत्री जीवात्मा और ब्रह्मके एकताका बोधक है । 'धियो यो नः प्रचोदयात' अर्थात् जो हमारी बुद्धिको प्रेरणा करता है, अर्थात् सर्व अन्तःकरणका प्रकाशक, सर्वका साक्षी प्रत्यगात्मा कहा जाता है, तिस प्रचोदयात् शब्द करके कथित आत्माका स्वरूप परब्रह्म 'तत्सवितुः' इत्यादि पदोंसे कथित है । तहां पर

संस्कृतम् ।

तत्र "ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः" इति तच्छब्देन प्रत्यग्भूतं स्वतः सिद्धं परं ब्रह्मोच्यते । सवितुरिति सृष्टिस्थितिप्रलयलक्षणकस्य सर्वप्रपंचकस्य समस्तद्वैतविभ्रमस्याधिष्ठानं लक्ष्यते, वरेण्यमिति । सर्ववरणीयं निरतिशयानन्दरूपम् । भर्ग इत्यविद्यादिदोषभर्जनात्मकज्ञानैकविषयत्वम्। देवस्येति सर्वद्योतनात्मकाखण्डचिदेकरसम् । सवितुर्देवस्येत्यत्र षष्ठ्यर्थो राहोः शिरोवदौपचारिकबुद्ध्यादिसर्वदृश्यसाक्षिलक्षणं यन्मे स्वरूपं तत्सर्वाधिष्ठानभूतं परमानन्दनिरस्तसमस्तानर्थरूपं

भाषा ।

ॐ तत् सत् यह ब्रह्मके तीन प्रकारके नाम हैं, तत् शब्दसे सब भूतोंमें स्थित स्वतः सिद्ध परब्रह्म कहा जाता है । सविता यह उत्पन्न, पालन, प्रलय लक्षण वाला सर्व प्रपंचका तथा सर्व द्वैत भ्रमका अधिष्ठान है । 'वरेण्य' यह सबसे प्रार्थनीय और परमानन्दरूप है 'भर्ग' यह अज्ञानादिदोषोंका नाशक ज्ञानरूप है 'देवस्य' यह सर्वका प्रकाशरूप अखण्ड, चैतन्य, एकरस देव है । 'सवितुर्देवस्य' यहां पर षष्ठीका अर्थ "राहोः शिरः" की भांति औपचारिक है । बुद्ध्यादि सर्व दृश्य पदार्थोंका साक्षी रूप जो मेरा स्वरूप है तिस सर्व अधिष्ठान परमा-

संस्कृतम् ।

स्वप्रकाशचिदात्मकं ब्रह्मेत्येवं धीमहि ध्यायेम । एवं सति सह ब्रह्मणा स्वविवर्तजडप्रपञ्चेन रज्जुसर्पन्यायेनापवादः ।

सामानाधिकरण्यरूपमेकत्वं सोऽयमितिन्यायेन सर्वसाक्षिप्रत्यगात्मनो ब्रह्मणा सह तादात्म्यरूपमेकत्वं भवतीति सर्वात्मकब्रह्मबोधकोऽयं गायत्रीमन्त्रः सम्पद्यते, त्रिमहाव्याहृतीनामयमर्थः भूरिति सन्मात्रमुच्यते भुवइति सर्वं भाषयति प्रकाशयतीति व्युत्पत्त्या चिद्रूपमुच्यते । सुव्रियते इति व्युत्पत्त्या स्वरिति सुष्ठु सर्वैर्व्रियमाणसुखस्वरूपमुच्यत इति ।

भाषा ।

नन्द सर्वअनर्थरहित स्वयंप्रकाश चैतन्यरूप ब्रह्मका हम ध्यान करते हैं । इस प्रकार ब्रह्मके साथ तथा उसीके विवर्तरूप जड प्रपंच करके रज्जुसर्प न्यायसे अपवाद है ।

अर्थात् एक अधिकरण होनेसे एकरूपता है । 'सोऽयं' इस न्यायसे सर्वसाक्षी प्रत्यक् आत्मा (जीवात्मा) का ब्रह्मके साथ एकरूप होनेसे एकता सिद्ध है, इस प्रकार गायत्रीमंत्र सर्वस्वरूप ब्रह्मका बोधक है । तीन महाव्याहृतियोंका यह अर्थ है='भूः' इस शब्दसे सत्‌रूप ब्रह्म है, 'भुवः' सर्वसृष्टिका प्रकाश करता है, इस व्युत्पत्तिसे चैतन्यरूप कहा जाता है । 'स्वः' भलीप्रकार सबसे प्रार्थित सुखरूप आनन्द कहा जाता है ।

विद्यारण्यस्वामिकृतमन्त्रार्थः ॥

संस्कृतम् ।

तदिति वाङ्मनोगम्यं ध्येयं यत्सूर्यमण्डले ।
सवितुः सकलोत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणः ॥ १ ॥
वरेण्यमाश्रयणीयं यदाधारमिदञ्जगत् ।
भर्गस्स्वसाक्षात्कारेणाविद्यातत्कार्यदाहकम् ॥ २ ॥
देवस्य द्योतमानस्य ह्यानन्दात्क्रीडतोऽपि वा ।
धीमह्यहं सएवेति तेनैवाभेदसिद्धये ॥ ३ ॥

भाषा ।

तत्=वाणी और मनसे अगोचर जो सूर्यमण्डलमें ध्यान करने योग्य है । सवितुः=सकल लोकोंका उत्पत्ति, पालन और संहारका कारण है ॥ १ ॥

वरेण्यम्=सबके आश्रय लेनेयोग्य जो इस जगत्का आधार है । भर्गः=अपने स्वरूपको साक्षात् करनेसे अविद्या और उसके कार्यका नाशक है ॥ २ ॥

देवस्य=प्रकाशमान वा आनन्दरूपसे क्रीडा करनेवाला । धीमहि=हम निश्चय करके वही परमात्मा ब्रह्म हैं इस अभेदसिद्धिके लिए ॥ ३ ॥

संस्कृतम् ।

धियोऽन्तःकरणवृत्तीश्च प्रत्यक्प्रवणचारिणीः ।
य इत्यलिङ्गधर्मं यत्सत्यज्ञानादिलक्षणम् ॥ ४ ॥
नोऽस्माकं बहुधाभ्यस्तभिन्नभेददृशां तथा ॥
प्रचोदयात्प्रेरयतु प्रार्थनेयं विचार्यते ॥ ५ ॥

भट्टोजिदीक्षितविरचितगायत्री-भाष्यम् ।

तदिति–षू प्रेरणे । सुवति प्रेरयतीति सविता सूर्यः तत्सम्बन्धि सूर्यमण्डलावच्छिन्नामिति यावत् ।

भाषा ।

धियः = अन्तःकरणकी वृत्ति अर्थात् प्रत्यगात्मा (जीवात्माके) सन्मुख चलनेवाली (बुद्धि) यः = यहां लिङ्ग-व्यत्यय है, जो सत्य, ज्ञान और आनन्दरूप है ॥ ४ ॥

नः = हमारी बहुत प्रकारके अभ्यासोंसे भिन्न२ भेद देखनेवालोंकी, प्रचोदयात् = प्रेरणा करे । यह प्रार्थना है ॥ ५ ॥

तदिति–षू = धातु प्रेरणार्थमें है सबको प्रेरणा करनेवाला सविता अर्थात् सूर्यमण्डलमें व्यापक तेज है ।

संस्कृतम् ।

दीव्यतीति देवःपरमात्मा तस्य वरेण्यं सर्वैर्भजनीयम् । वृञ् एण्यः । अविद्याकामकर्मादिभर्जनाद्भर्गः । स्वरूपात्मकं ज्योतिः धीमहि तदेवाहीमिति तद्दासोऽहमिति वा ध्यायेम यः देवः नः अस्माकं धियः बुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयतीत्यर्थः । बाहुलकाल्लडर्थे लेट् । लेटोऽडाटौ इत्याडागमः । भूः भुवः स्वः एते त्रयो लोका आपि ॐब्रह्मैवेति ।

भाषा ।

जो सबको प्रकाश करै वह देव परमात्मा है तिस परमात्माका सब करके चिन्तन योग्य तेज है, एण्य प्रत्यय युक्त वृञ् धातुसे 'वरेण्यम्' सिद्ध होता है । अज्ञान काम कर्मादिका नाशक होनेसे भर्ग आत्मस्वरूप ज्योति है उसका मैं ध्यान करता हूँ (अर्थात्) वह परमात्मा मैं हूँ वा उस परमात्माका दास (अधीन) हूँ ऐसा ध्यान करता हूँ, जो देव हमारी बुद्धिको प्रेरणा करता है । 'बाहुलकाल्लडर्थे लेट्।लेटोऽडाटौ ' इस सूत्रके अनुसार आट्का आगम हुआ । भूः, भुवः, स्वः यह तीनों व्याहृतियाँ तीनों लोक हैं ॐकार ब्रह्मरूप है इति ।

वरदराजभाष्यम् ।

संस्कृतम् ।

नित्यमन्त्रो व्याख्यायते । तच्छब्दश्रुतेर्यच्छब्दोऽध्याहारार्थः। सवितुः जगतां प्रसवितुः। सविता वै प्रसवानामीशे । उत्तमे शिषे प्रसवस्य त्वमेकः इत्यादिश्रुतेः।वरेण्यम्"वृञ् सम्भक्तौ" एण्यप्रत्ययः सर्वेषां सम्भजनीयम्। भर्गस्तेजः भञ्जनाद्भर्गःप्रकाशप्रदानेन जगतोबाह्याभ्यन्तरतमोभञ्जकत्वाद्भर्जनाद्वा कालात्मकतया सकलकर्मफलपाकहेतुत्वाद्भरणाद्वा वृष्टिप्रदानेन भूतानां भरणहेतुत्वात्। देवस्य

भाषा ।

नित्यमंत्र गायत्रीकी व्याख्या करता हूँ । तत् शब्दके श्रवणसे यत् शब्दका ग्रहण है। सवितुः जगत्को उत्पन्न करनेवाला सविता सर्वसृष्टिका स्वामी है।

हे सूर्य! आप सृष्टिके एक उत्पन्न करनेवाले हो—यह श्रुति है वरेण्यम् = एण्य प्रत्यय युक्त वृञ् धातु सम्यकप्रकारके भक्त्यर्थमें है, अर्थात् सब प्राणियोंके चिन्तन योग्य है। भर्गः = भर्ग तेज है जगत्के बाहर भीतर प्रकाश करनेसे अंधकारका नाशक है वा सर्वजगत्का भञ्जन (संहार) करनेसे भर्ग नाम है।

संस्कृतम् ।

द्योतमानस्य धीमहि चिन्तयामः, ध्यै चिन्तायाम्, देवस्य सवितुर्वरेण्यं । यद्भर्गस्तद्ध्यायामः आदित्यमण्डलान्तर्वर्तिनं तेजोमयं पुरुषमनुचिन्तयामः य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः अथ य एष एतस्मिन्मण्डलेऽर्चिषि पुरुष इत्यादिश्रुतेः धियो यो नः सविता अस्माकं धियः हानोपादानविषयाणि ज्ञानानि प्रचोदयात् प्रचोदयति प्रवर्तयति तत्सवितुस्तद्भर्गश्चिन्तयाम इति ॥

भाषा ।

वा कालरूपसे सर्व कर्मोंके फलोंके परिपाकका कारण होनेसे भर्ग है । वा वृष्टि प्रदानसे प्राणियोंके पालनका हेतु होनेसे भर्ग है । देवस्य = प्रकाशमानका धीमहि = चिन्तन करता हूँ ध्यै धातु चिन्तन अर्थमें है सविता देवका वरणीय जो भर्ग है उस भर्गका चिन्तन करता हूँ अर्थात् सूर्यमण्डलके भीतर वर्तमान तेजोमय पुरुषका चिन्तन करता हूँ । जो यह प्रत्यक्ष सूर्यमण्डलके भीतर हिरण्मय पुरुष है और जो यह इस तेजोरूप मण्डलमें प्रत्यक्ष पुरुष है यह (श्रुति) है धियो यो नः=जो सविता हमारे त्याग ग्रहण विषयक ज्ञानोंकी प्रेरणा करता है उस सविता देवके तिस भर्गका मैं ध्यान करता हूँ । इति ।

तारानाथतर्कवाचस्पत्युक्त-गायत्रीवाक्यार्थः ।

संस्कृतम् ।

सवितुर्देवस्य भर्गाख्यं परम्ब्रह्मस्वरूपं तेजः चिन्तनीयं मम हृत्पद्मस्थितेनैव भर्गाख्येन तेजसा प्रेर्यमाणस्तदेव भूर्लोकान्तरिक्षलोकस्वर्गलोकादिब्रह्माण्डोदरवृत्ति सचराचरत्रैलोक्यस्वरूपं मम हृदयमध्ये बाह्ये च सूर्यमण्डले वर्तमानतेजसा एकीभूतं परब्रह्मस्वरूपं ज्योतिरहमिति चिन्तयञ्जपं कुर्य्यादिति गा० व्या० ॥

भाषा ।

सविता देवका भर्गनामक परब्रह्मस्वरूप तेज चिन्तन करनेयोग्य हमारे हृदय-कमलमें स्थित, भर्गनामक तेजसे प्रेरित है, वही भूलोक, अन्तरिक्षलोक, स्वर्गलोकादि ब्रह्माण्डके भीतर वर्तमान चराचर त्रैलोक्य स्वरूप हमारे हृदयमें, बाहर और सूर्यमण्डलमें वर्त्तमान तेज द्वारा एक रूप परब्रह्मस्वरूप ज्योति मैं हूँ ऐसा चिन्तन करता हुआ जप करै।

विष्णुधर्मोत्तरोक्तमन्त्रवर्णार्थः ।

संस्कृतम् ।

कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि च ।
पञ्चबुद्धीन्द्रियार्थाश्च भूतानां चैव पञ्चकम् ॥ १ ॥
मनो बुद्धिस्तथैवात्मा अव्यक्तश्च यदुत्तमम् ।
चतुर्विंशति एतानि गायत्र्या अक्षराणि च ॥
प्रणवं पुरुषं विद्धि सर्वगं पञ्चविंशकम् ॥ २ ॥

निष्कर्षः ।

यत्प्रकाशात्मकोत्पत्तिस्थितिलयकारणसूर्यमण्डलान्तर्गतमोङ्कारवाच्यसच्चिदानन्दलक्षणचिन्तनी-

भाषा ।

पांच कर्म इन्द्रिय, पांच ज्ञान इंद्रिय, पांच ज्ञानइन्द्रियोंके विषय आकाशादिक पांच महाभूत ॥ १ ॥

मन, बुद्धि जीवात्मा और जो इन कर्मोंसे श्रेष्ठ कारणरूप अव्यक्त है यह चौबीस गायत्रीके अक्षर (रूप) हैं। सर्व चराचरमें जो व्यापक प्रणवरूप पुरुष है उसको पच्चीसवाँ जानो ॥ २ ॥

जो प्रकाशरूप उत्पत्ति, स्थिति, लयका कारण सूर्यमण्डलके अन्तर्गत ॐकारका वाच्य सच्चिदानन्दस्वरूप

संस्कृतम् ।

याऽविद्यादिदोषभर्जनसमर्थब्रह्मात्मकं तेजः, यच्चास्मद्बुद्धिवृत्तिनियामकमन्तःकरणावच्छिन्नप्रत्यगात्मभूतकूटस्थलक्षणं त्वात्मतेजः, तत्परेशजीवयोर्लक्ष्यभूतब्रह्मात्मैकभावं चिन्तयामः ॥

भावार्थः ।

गायत्रीमंत्रप्रतिपाद्यस्य प्रणववाच्यब्रह्मत्वविवक्षया तदादौ प्रणवोच्चारणम् ॥ १ ॥

भाषा ।

चिन्तन करने योग्य, अविद्यादिक दोषोंके नाशकरनेमें समर्थ ब्रह्मरूप तेज है पुनः जो हमारी बुद्धिवृत्तिका प्रेरक अन्तःकरणमें व्यापक प्रत्यगात्म कूटस्थरूप आत्मतेज है । उस परमेश्वर और जीवका लक्ष्यभूत अर्थात् ब्रह्म और आत्माके एकरूपका हम चिन्तन करते हैं ।

गायत्रीमन्त्रसे प्रतिपाद्य देवको प्रणववाच्य ब्रह्मरूप कहनेकी इच्छा करके तिस गायत्रीके आदिमें प्रणवका उच्चारण है ॥ १ ॥

संस्कृतम् ।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तदितिशब्देभ्यो ह्युत्तमाधिकारिणं प्रति प्रणववाच्यं त्रैलोक्योपलक्षितसकलाविद्यकस्याधिष्ठानभूतं तदविद्याण्डोपरिस्थततत्पदलक्ष्यभूतसर्वपरिच्छेदरहितसच्चिदनन्तानन्दलक्षणं शुद्धं ब्रह्मोपादिशति ॥ २ ॥

तथा–सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहीति शब्देभ्यो मध्यमाधिकारिणं प्रति प्रकाशमानोत्पत्तिस्थितिलयकारणसावितृमण्डलान्तर्गतचिन्तनीयभर्गाख्यमायोपहितचैतन्येश्वरज्ञानमालक्ष्य तदुपासनां दर्शयति ॥ ३ ॥

भाषा ।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत् इन शब्दोंसे उत्तमाधिकारीके प्रति प्रणवका वाच्य त्रैलोक्य करके उपलक्षित सर्व अविद्यासम्बन्धी कार्योंके अधिष्ठानरूप और तिस अविद्याके ऊपर स्थित तत्पद्का लक्ष्यभूत सर्वपरिच्छेदसे रहित सच्चिदनन्तानन्दरूप शुद्ध ब्रह्मका उपदेश है ॥ २ ॥

तथा–'सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि' इन शब्दोंसे मध्यमाधिकारीके प्रति प्रकाशमान, उत्पत्ति, स्थिति, लयका कारण, सूर्यमण्डलके अन्तर्गत चिन्तनीय भर्ग नामक मायोपहित चैतन्य ईश्वर ज्ञानका लक्ष्य करके तिस ईश्वरकी उपासनाको दर्शाया है ॥ ३ ॥

संस्कृतम् ।

तथा धियो यो नः प्रचोदयादिति शब्देभ्योऽविद्योपाधिविशिष्टचेतनकूटस्थलक्षणजीवात्मज्ञानमालक्ष्य निकृष्टाधिकारिणं प्रति कर्मकाण्डं प्रदर्शितम् ॥ ४ ॥

एवमुपाधिभेदैस्त्रिविधं ब्रह्म निर्दिष्टम् । तदुपाधिनिर्मुक्तमेकमेव लक्ष्यते । तथाऽधिकारिभेदैः कर्मादि त्रिविधं सूचितम् । एवं तज्जपतदर्थभावनयोः परिपाकादहंवृत्तितिरोभावपूर्विका केवलध्येयाकारा वृत्तिरुदेति तदा जीवन्मुक्तो भवति ॥५॥

भाषा ।

तथा 'धियो यो नःप्रचोदयात्' इन शब्दोंसे अविद्या उपाधियुक्त चैतन्यकूटस्थरूप जीवात्माके ज्ञानको लक्ष्य करके निकृष्ट अधिकारीके प्रति कर्मकाण्डको दर्शाया है ॥ ४ ॥

इस प्रकारसे उपाधिके भेदसे तीन प्रकारका ब्रह्मभेद कहागया है तिन उपाधियोंसे निर्मुक्त एकही ब्रह्म लक्षित है। तथा अधिकारी भेदसे कर्म, उपासना, ज्ञान, तीन प्रकारसे सूचित किया गया है । इस प्रकार गायत्रीका जप और उसके अर्थकी भावनाको परिपक्वतासे अहम् इस वृत्तिके अभावपूर्वक केवल ध्येयाकार (ब्रह्माकार) वृत्ति उदय होती है, तब जीवन्मुक्त होता है ॥ ५ ॥

संस्कृतम् ।

एतन्मन्त्रेण भगवन्नेतादृक्परमार्थभूतं त्वां वयं चिन्तयामोऽस्मद्बुद्धिं धर्मादिषु प्रेरयत्विति जीवः प्रार्थयते ॥ ६ ॥

परञ्च—यन्मनसि सङ्कल्पादिकं तद्बुद्धिर्निश्चिनोति तदेव जीवात्मेन्द्रियद्वारा करोतीति नियमाद्यदा तत्प्रार्थनाभिः प्रसन्नेशो धर्ममार्गे बुद्धिं प्रवर्त्तयेत्तदा तदनुकम्पितो जीवः शुभकार्य्यं करोति तेन

भाषा ।

हे भगवन् ! इस गायत्री मन्त्रसे ऐसे परमार्थरूप आपका मैं चिन्तन करता हूँ । हमारी बुद्धिको धर्मादिविषयोंमें आप प्रेरणा करें इस प्रकार जीव प्रार्थना करता है ॥ ६ ॥

फिर भी जो मनसे संकल्पादिक होते हैं उनको बुद्धि निश्चय करती है और जो बुद्धि निश्चय करती है उसीको जीवात्मा इन्द्रियद्वारा करता है । इस नियमसे जब तिस प्रार्थनासे प्रसन्न परमेश्वर धर्ममार्गमें बुद्धिकी प्रेरणा करता है, तब तिस परमेश्वरकी दया करके युक्त जीव शुभ कार्यको करता है । तिस शुभ कार्यके करनेसे

संस्कृतम् ।

सकलदुरितक्षयपूर्विका दृढतरा परा भक्तिर्जायते ततो विक्षेपशमनपूर्वकं परमात्मज्ञानं स्वयमुदेति । तत आवरणक्षयाज्जीवन्मुक्तो भवति । तस्मादतः परा श्रेयस्करोपासना नास्त्येवेति ॥ ७ ॥

अत्र बाणप्रस्थादीनां तु तन्मंत्राद्यन्तस्थब्रह्मात्मकप्रणवाभ्यां मध्येऽपि "आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा॥" सर्पादौ रज्जुसत्तेव ब्रह्मसत्तेव केवलम्" प्रपञ्चाधाररूपेण वर्ततेऽतो जगन्नहि

भाषा ।

सकल पापक्षय पूर्वक दृढतर परा भक्ति उत्पन्न होती है, तब विक्षेपके नाश होनेसे परमात्माका ज्ञान स्वयं उदय होता है तिसके अनन्तर आवरणके क्षय होनेसे जीवन्मुक्त होता है इस कारणसे उस गायत्रीकी उपासनाके परे कोई कल्याणदायी उपासना नहीं है ॥ ७ ॥

इस मन्त्रमें बाणप्रस्थादिकोंको इस मन्त्रके आदि अन्तमें स्थित ब्रह्मरूप प्रणवके होनेसे मध्यमें भी कहा है । "जो आदि अन्तमें नहीं है वह वर्तमान कालमें भी नहीं है सर्पादिकोंके भ्रममें जैसे रज्जुसत्ता है उसी प्रकार सब प्रपञ्चमें ब्रह्म सत्ताही है ॥ " प्रपञ्चोंके आधार रूपसे ब्रह्म

संस्कृतम् ।

इत्यादिवाक्येभ्योऽन्यथाख्यातिमायिकभेदनिरसनपूर्वकेण ब्रह्मैव सूचितम्भवति ॥

गायत्रीजपमहत्त्वम् ।

(१)गायत्र्या न परं जप्यं गायत्र्या न परन्तपः ।
गायत्र्या न परं ध्यानं गायत्र्या न परं हुतम्॥१॥

(२) 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' यतो जपयज्ञे पशुबीजादिवधो न सम्भवति ॥ २ ॥

भाषा।

वर्तमान है इस कारण प्रपंच नहीं है" इत्यादि वचनोंसे अन्यथाख्याति मायिक भेद त्यागपूर्वक ब्रह्मही सूचित होता है।

गायत्रीसे परे और कोई जप नहीं है । गायत्रीसे श्रेष्ठ कोई तप नहीं है। गायत्रीसे परे कोई ध्यान नहीं है । गायत्रीसे परे कोई हवन नहीं है ॥ १ ॥

सब यज्ञमें जपयज्ञ मैं हूँ। क्योंकि यह पशुबीजादिके बधसे रहित है ॥ २ ॥

(१) ब्रह्मवाक्यम् ।

(२) भगवद्गीतायाम् अ० । १० श्लो० २५।

संस्कृतम् ।

(१) ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३ ॥

जपभेदः ।

(२) जपः स्यादक्षरावृत्तिर्मानसोपांशुवाचकैः ।
धिया यदक्षरश्रेणीं वर्णस्वरपदात्मिकाम् ॥
उच्चरेदर्थमुद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः॥१॥
जिह्वौष्ठौ चालयेत्किञ्चिद्देवतागतमानसः ।
किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः२
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकः स जपः स्मृतः॥३॥

भाषा ।

विधियज्ञ सहित जो चार प्रकारके पाकयज्ञ हैं वह जपयज्ञके सोलहवीं कलाके बराबर नहीं है ॥ ३ ॥

मन्त्रोंके अक्षरोंकी बार २ आवृत्ति करनेको जप कहते हैं वह जप मानासिक, उपांशु और वाचिक भेद करके तीन प्रकारका है, जिस मन्त्रके अक्षरोंकी पङ्क्तिको वर्ण-स्वर, पदयुक्त अर्थका उद्देश्य करके मनसे उच्चारण किया जाता है वह मानसिक जप कहा जाता है ॥ १ ॥

जिह्वा और ओष्ठ किञ्चित् चला करके देवतामें मन लगाकर किञ्चित् सुननेके योग्य उपांशु जप है ॥ २ ॥ वचनसे मन्त्रका उच्चारण करना वाचिक जप है ॥ ३ ॥

(१) मनु०अ० । २ । ८६ ।
(२) तन्त्रसारे। नृसिंहपुराणे श्रीविष्णुधर्मोत्तरे च जपभेद उक्तः।

संस्कृतम् ।

(१) विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः४

जपकालः ।

(२) पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावदादित्यदर्शनम् ॥ १ ॥
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यामादित्यञ्च यथाविधि ।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावत्तारां न पश्यति ॥२॥

भाषा ।

विधियज्ञोंसे जपयज्ञ दशगुण श्रेष्ठ है, जपयज्ञोंमें उपांशु सौगुण श्रेष्ठ है, उपांशुसे मानस जप हजारगुणा श्रेष्ठ है॥४॥

नक्षत्रोंके रहते ही आरंभ कर सूर्यदेवके उदयपर्यन्त प्रातःसन्ध्याकर सविधि गायत्रीमन्त्रका अभ्यास करना चाहिये ॥ १॥

सायं सन्ध्या और सूर्यदेवकी उपासनाकर जबतक तारागण न दिखाई पड़ें तब तक यथाविधि गायत्री मन्त्र-का अभ्यास करना चाहिये ॥ २ ॥

---

(१) मनु० अ० २ । श्लो० ८५।बृ० यो० याज्ञ अ०७।१३६।
(२) हारीतसंहिता ४ । १८–१९ ।

जपस्थानं तत्फलञ्च।

संस्कृतम्।

(१) गृहे ह्येकगुणं जप्यं नद्यां तु द्विगुणं स्मृतम्।
गवां गोष्ठे शतगुणमग्न्यागारे शताधिकम्॥१॥
सिद्धक्षेत्रे च तीर्थे च देवतायाश्च सन्निधौ।
सहस्रं शतकोटीनामनन्तं विष्णुसन्निधौ॥२॥
(२)कदाचिदपि नो विद्वान् गायत्रीमुदके जपेत्।
गायत्र्यग्निमुखी प्रोक्ता तस्मादुत्थाय ताञ्जपेत्३

भाषा।

घरमें जप करनेसे एक गुण फल है, नदीके तटपर दूना फल कहा गया है, गोशालामें सौगुण, अग्न्यागार(अग्निहोत्र स्थान) में सौगुणसे अधिक फल है॥ १॥

सिद्ध क्षेत्रमें, तीर्थमें, देवमन्दिरके निकट सौ करोडका हजारगुना फल होता है और विष्णुके निकट अनन्त फल है॥ २॥

विद्वान् कभी जलमें गायत्री न जपै क्योंकि गायत्री अग्निमुखी कही गई है इस कारण जलके बाहर गायत्री जपे॥ ३॥

---

(१) बृ० योगिया० अ० ७। १४३।
(२) गोभिल०

जपविधिः ।

संस्कृतम् ।

(१)स्नानं कृत्वा शुचौ देशे बद्ध्वा रुचिरमासनम् ।
त्वया मां हृदि सञ्चिन्त्य सञ्चिन्त्य स्वगुरुं ततः॥१॥
(२)उदङ्मुखःप्राङ्मुखो वा मौनी चैकाग्रमानसः ।
विशोध्य पञ्चतत्त्वानि दहनप्लावनादिभिः ॥ २ ॥
मन्त्रन्यासादिकं कृत्वा सकलीकृतविग्रहः ।
आवयोर्विग्रहं ध्यायन्प्राणापानौ नियम्य च ॥ ३ ॥

भाषा ।

स्नानकर पवित्र स्थानमें रुचिर (मृदु) आसन बाँध तुम्हारे (पार्वती) सहित हमारी (शिव) और गुरुकी हृदयमें चिन्तना कर ॥ १ ॥

उत्तर या पूर्वमुख होकर मौन और एकाग्रचित्त हो दहन प्लावनादिसे पञ्चतत्त्वोंका विशोधनकर और मन्त्रन्यासादिसे ब्राह्मीय शरीर हमारे (शिव–पार्वती) रूपका ध्यान करते हुए प्राण अपान वायुको संयत कर जप करना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

---

(१) शिव पु०वायु सं०अध्या० १२ श्लो० १२२–१२४
(२) ” ” ” ” ” १४८

संस्कृतम् ।

ऊष्णीषी कंचुकी नग्नो मुक्तकेशो मलावृतः ।
अपवित्रकरोऽशुद्धो विलपन्न जपेत्कचित् ॥ ४ ॥

मालाविवरणम् ।

(१) अंगुल्या जपसङ्ख्यानमेकमेकमुदाहृतम् ।
रेखयाष्टगुणं विद्यात्पुत्रजीवैर्दशाधिकम् ॥ १ ॥
शतं स्याच्छंखमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्त्रकम् ।
स्फाटिकैर्दशसाहस्त्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ॥ २ ॥

भाषा ।

पगडी बांधकर अङ्गा पहनकर नग्नावस्थामें केश खुले हुए गुलूबन्द बाँधे अपवित्र हाथसे अशुद्धदशामें और बोलते हुए कभी जप न करे ॥ ४ ॥

अङ्गुलियोंमें जप करनेसे एकगुण फल होता है और अंगुलियोंकी पोरोंमें जप करनेसे अष्टगुण पुत्रजीवीकी मालामें दशगुण ॥ १ ॥

शंख और मणियोंकी मालामें शतगुण मूँगेकी मालामें सहस्त्रगुण स्फटिककी मालामें दशसहस्त्रगुण, मुक्ताकी मालामें लक्षगुण ॥ २ ॥

---

(१) शिवपु० वायुसं० अध्या० १२ श्लो० १३६-१३८

संस्कृतम् ।

पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते ।
कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुणितं भवेत् ॥ ३ ॥

(१) तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ १ ॥

(२)नोच्चैर्जपं च संकुर्याद्रहः कुर्यादतान्द्रितः ।
सव्याहृतिमनस्तूष्णीम्मनसा चापि चिन्तयेत्॥२॥

(३) मनःप्रहर्षणं शौचं मौनं मंत्रार्थचिन्तनम् । अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः ॥ ३ ॥

भाषा ।

कमलगट्टेकी मालामें दशलक्षगुण, सुवर्णकी मालामें कोटिगुण, कुशग्रन्थि और रुद्राक्षकी मालामें जप करनेसे अनन्त फल होता है ॥ ३ ॥

जिस मंत्रका जप करे उसीके अर्थकी भावना करता रहे ॥ १ ॥

उच्चस्वरसे जप न करे, आलस्यको त्यागकर एकान्त स्थानमें वाणीको रोककर एकाग्रमनसे मंत्रका जप करे और मनमें ध्यान करता रहे ॥ २ ॥

प्रसन्नमन, पवित्रता, मौन, मंत्रार्थ-चिन्तन, चित्तकी एकाग्रता और अखेद ये जपके फलके हेतु हैं ॥ ३ ॥

---

(१) पातं० यो० सू० पा० १२८

(२) अग्निपुराणे ।

(३) ब्रह्मा०

जपसंख्या ।

संस्कृतम् ।

(१) असंख्यमासुरं यस्मात्तस्मात्तद्गुणयेद् ध्रुवम् ॥ १ ॥

(२) सावित्रीं सहस्रकृत्वः प्रातर्जपेच्छतकृत्व-परिमितः कृतो वा ॥२ ॥

(३) सहस्रकृत्वः सावित्रीं जपेदव्यग्रमानसः ।
शतकृत्वोऽपि वा सम्यक्प्राणायामपरो यदि ॥ ३ ॥
सप्तव्याहृतिपूर्वां च आद्यन्तप्रणवान्विताम् ।
मनसा वा जपेच्चैव दशकृत्वो वरः स्मृतः ॥ ४ ॥

भषा ।

विना संख्याके जप आसुरी है तिसकारणसे गिनती पूर्वक जप करना आवश्यक है ॥ १ ॥

प्रातःकालमें गायत्री मंत्र एक हजार जपै अथवा सौ बार अथवा अपरिमित ॥ २ ॥

भली भांति प्राणायामके पश्चात् एक हजार अथवा सौबार सावित्रीमंत्र चित्तकी एकाग्रतापूर्वक जपै ॥ ३ ॥

सात व्याहृतियोंके सहित गायत्रीके आदि अन्तमें प्रणव युक्त मानस जप करै तो दशवार भी श्रेष्ठ कहा गया है॥४॥

---

(१) बृ० पाराशरसं०अ० ५ । ४१ ।
(२) बोधायनधर्मसूत्रे प्रश्न० २ अ० सू० १२ ।
(३) योगियाज्ञवल्क्यः ।

संस्कृतम् ।

(१)कल्पोक्तैव कृते संख्या त्रेतायां द्विगुणा भवेत् ।
द्वापरे त्रिगुणा प्रोक्ता कलौ संख्या चतुर्गुणा ॥ ५ ॥

जपफलम् ।

(२) सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ।
गायत्रीं यो जपेद्विप्रो न स पापेन लिप्यते ॥ १ ॥

(३) गायत्रीं विस्तराद्दिव्यां पठेदेव शृणोति वा । मुच्यते सर्वपापेभ्यः परम्ब्रह्माधिगच्छति ॥२॥

भाषा ।

सतयुगमें शास्त्रोक्त संख्या, त्रेतामें उसका दूना, द्वापरमें तिगुना, कलियुगमें चौगुना जप करना चाहिये ॥ ५ ॥

गायत्री देवीका हजार वार जप श्रेष्ठ है, सौ मध्यम है, दश निकृष्ट है इस प्रकार जो गायत्रीका जप करता है वह ब्राह्मण पापसे लिप्त नहीं होता है ॥ १ ॥

जो पुरुष विस्तारपूर्वक इस दिव्य गायत्रीका जपना श्रवण करे वह सब पापोंसे छूट कर परब्रह्मरूप होजाता है ॥ २ ॥

---

(१) वैशंपायनसं०

(२) अत्रिस्मृ० अ० २ श्लो० ९

(३) ब्रह्मवाक्यम् ।

संस्कृतम् ।

(१) जपनिष्ठो द्विजः श्रेष्ठोऽखिलयज्ञफलं लभेत्।सर्वेषामेव यज्ञानां जायतेऽसौ महाफलः॥३॥

(२) दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुरा कृतम्। सहस्रेण त्रिजन्मोत्थं गायत्री हन्ति दुष्कृतम् ॥४॥

(३) गायत्रीं संस्मरेद्योगात्स याति ब्रह्मणः पदम्। गायत्रीजपनिरतो मोक्षोपायं च विन्दति॥५॥

भाषा ।

जपमें निष्ठावाला द्विज श्रेष्ठ है और समस्त यज्ञका फल प्राप्त करता है। सब यज्ञोंमें गायत्री मन्त्रके जपका महाफल है ॥ ३ ॥

दशबार जप करनेसे इस जन्मका और सौबार जप करनेसे पहिले जन्मका और हजार वार जप करनेसे तीन जन्मों (पहिले जन्मका, इस जन्मका और अगले जन्म) के पापको गायत्री नाश करती है ॥ ४ ॥

जो पुरुष एकाग्रचित्त करके गायत्रीका स्मरण करता है वह ब्रह्म पदको प्राप्त होता है । गायत्रीके जपमें निरत पुरुष मोक्षके उपायको प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

---

(१) तन्त्रसारे पृ० ३९ । (शिवधर्मे च)

(२) बृ० पाराशर सं० अ० ५ श्लो० ६२ ।

(३)बृहत्पाराशरसं०अ०५श्लो०७४शंखस्मृ०अ०१२श्लो०।३०।

संस्कृतम् ।

(१)सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्रिकं द्विजाः।
महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥ ६ ॥
सावित्र्याश्चैव मंत्रार्थं ज्ञात्वा चैव यथार्थतः ।
तस्यां यदुक्तं चोपास्य ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ४ ॥
(योगियाज्ञवल्क्यः)

ब्रह्महत्या सुरापानं गुरुदाराभिमर्षणम् ।
यच्चान्यद् दुष्कृतं सर्वं पुनातीत्याह वै मनुः॥ ५ ॥

भाषा ।

जो द्विज ग्रामसे बाहर एकान्त स्थानमें प्रणवव्याहृति युक्त गायत्रीका जप सहस्रवार एक महीने तक करता है जैसा सर्प कैंचुलीको छोड़ता है इसी प्रकार वह सब महान् पापोंसे छूट जाता है ॥ ६ ॥

गायत्री मंत्रका यथार्थ अर्थ जानकर उसमें कहे हुएकी जो उपासना करता है वह ब्रह्म होता है ॥ ४ ॥

ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुपत्नीगमन और इससे इतर सर्वपातक गायत्रीमन्त्रके जपसे नाश होता है ऐसा मनुने कहा है ॥ ५ ॥

---

(१) मनु० अ० २ श्लो० ७९ ।

॥ श्रीः ॥

अथ गायत्र्यष्टकम् ।

संस्कृतम् ।

गायत्री श्रुतिजननी हि ब्रह्मविद्या
श्रीसाङ्ख्यायनसहगोत्रका त्रिसन्ध्या ।
षट्कुक्षिः किल त्रिपदा च पंचमौलिः
सम्भाव्या प्रतिवदनं जनैस्त्रिनेत्रा ॥ १ ॥
सावित्री शरदमृतांशुलक्षकान्तिः
शुक्लस्रग्वसनधरा प्रभा सुरेशी ॥
ध्येया सा मणितपनीयभूषिताङ्गी
तिर्यग्या रमत उपर्यधः ककुप्सु ॥ २ ॥

भाषा ।

अर्थ—वेदमाता गायत्री ही ब्रह्मविद्या है । यह सांख्यायन गोत्रवाली त्रिसन्ध्या (प्रातर्मध्याह्नसायङ्का लीना) षट्कुक्षि (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिषरूपा) पञ्चमौलि (अधिलोक, अधिज्योतिष, अधिविद्य अधिप्रज और अध्यात्मरूपवाली) प्रतिवदन त्रिनेत्रा (प्रतिमुख, ध्याता, ध्यान और ध्येयस्वरूपा) त्रिपदा-ऋग्यजुः-साम तीन पदवाली) किल (निश्चयकरके) सम्भाव्या (भावना किये जानेवाली है) ॥ १ ॥

शरद् कालके लक्षचन्द्रमाके सदृश कान्तिवाली श्वेतमाल्य तथा श्वेतवस्त्र धारण करनेवाली रत्नकाञ्चनसे भूषित अंगवाली वह उत्कृष्ट ज्योतिवाली देवी सावित्री ऊपर नीचे तिर्छे सब दिशाओंमें विराजमान है ऐसा ध्यान करे ॥ २ ॥

संस्कृतम् ।

बिभ्राणां भजति कमण्डलुं च दण्ड-
मक्षाणां स्रजमभयप्रदां द्विजानाम् ॥
श्रीविष्णुप्रियहृदयां च ब्रह्मभाला
मग्न्यास्यां गिरिशशिखां परां सदाऽऽप्तः ॥३॥
प्रातस्त्वं सवितरि बालिकाऽम्ब भाव्या
मध्याह्ने शिवयुवती जरा प्रदोषे ॥
आत्मस्था भगवति गीयसे निशायां
वर्णानां त्वमसि गतिप्रदा चतुर्णाम् ॥ ४ ॥

भाषा ।

विष्णु जिनका प्रिय हृदय, ब्रह्मा ललाट, अग्नि मुख, और शिव शिखा हैं इसप्रकार द्विजोंको अभय देनेवाली कमण्डलु, दण्ड, अक्षमाला धारण करनेवाली परात्मिका भगवतीको आप्तजन भजते हैं ॥ ३ ॥

हे माता ! सूर्यमण्डलमें प्रातःकाल बालिका (ब्राह्मी) मध्याह्नकाल युवती शैवी, और सायङ्काल वृद्धा (वैष्णवी) रूपसे तू भावना की जाती है । तथा हे भगवती ! तू रात्रिमें (मनके लय होनेसे सब किरणोंके सिमिट जानेपर सुषुप्तिमें) आत्मस्था कहलाकर गाईजाती है (अत एव) तू चारो वर्णोंकी गति देनेवाली है ॥ ४ ॥

संस्कृतम् ।

मातस्ते भजनमहिम्न आत्मसाक्षा-
त्कारोऽरं भवति यथा हि कौशिकस्य ॥
आर्याणां खलु परमात्मशक्तिरेका
चिद्विद्या जगति चराचरे विभासि ॥ ५ ॥
अत्त्यन्नं श्वसिति वचः शृणोति जीवः
पादाभ्यां चलति निरीक्षते पदार्थान् ॥
मातर्यत्किमपि करोति तत्त्वयैव ॥
क्षीणास्त्वां सततममन्तवो भवन्ति ॥ ६ ॥

भाषा ।

हे माता ! तेरे भजनकी महिमासे शीघ्र आत्मसाक्षात्कार होता है जिस प्रकार विश्वामित्रको हुआ । आर्यजनोंकी तू अकेली चैतन्यात्मिका विद्या ब्रह्मशक्ति चराचर जगतमें विराजती है ॥ ५ ॥

जीव जो अन्न खाता है, श्वास लेता है वचन सुनता है, पैरोंसे चलता है, पदार्थोंको देखता है अर्थात् जो कुछ करता है वह तुझसे ही अर्थात् तुझ शक्तिरूपसे ही सब कुछ करता है हे माता ! तुझको नहीं माननेवाले सदैव क्षीण (श्रीहीन, रहते हैं ॥ ६ ॥

संस्कृतम् ।

ओंकारस्त्वमसि ममाम्ब भूर्भुवः स्वः
त्रैलोक्यप्रसाविनि ब्रह्मविष्णुरुद्राः ॥
यत्किञ्चिद्भवति भविष्यति प्रभूतं
सर्वं तत्त्वमसि भवानि निर्विकल्पे ॥ ७ ॥
या वाण्यो मुखकमलाद्विनिस्सरन्ति
भक्तानां तव कृपया भवन्ति सत्यम् ॥
सन्तापक्षयकरि पुत्रवत्सलेऽम्ब
कल्याणि प्रयतयशःप्रदे प्रसीद ॥ ८ ॥

भाषा ।

हे मेरी माता ! तू ॐरूप है, तू भूः, भुवः, स्वः तीनों व्याहृतियाँ है । हे तीनोंलोककी उत्पन्न करनेवाली भवानी ! तू ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र है । हे निर्विकल्पात्मिके ! जो कुछ होता है; होगा और हुआ वह सब तू ही है ॥ ७ ॥

हे पुत्रवत्सला माता ! भक्तोंके मुखारविन्दसे जो बोली निकलती है वह तेरी कृपासे सत्य होती है । हे सन्तापको दूर करनेवाली ! कल्याण करनेवाली ! पवित्र यश देनेवाली ! तू प्रसन्न हो ॥ ८ ॥

संस्कृतम् ।

गायत्र्यष्टकमिदमार्यसम्मतं यद् ।
भक्त्या तत्पठति सदा द्विजः प्रशान्तः ॥
सावित्रीजपफलमश्नुते सलीलं
जानीते सपदि च रामनन्दनाम्बाम् ॥ ९ ॥

भाषा ।

इस आर्यसम्मत गायत्रीके अष्टकको भक्तिपूर्वक शान्तचित्त जो द्विजजन सदा पढ़ते हैं, वे अनायास ही गायत्रीके जपका फल प्राप्त करते हैं और रामनन्दनकी माता (गायत्री) से परिचित होते हैं ॥ ९ ॥

(इति फैजाबादीय हिन्दू हाईस्कूलस्थप्रधानसंस्कृताध्यापकेन श्रीरामनन्दनसहायेन निर्मितं गायत्र्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥

॥ गायत्र्यर्पणमस्तु ॥

सूर्यप्रार्थना ।

संस्कृतम् ।

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे
जगत्प्रसूति-स्थिति-नाश-हेतवे ॥
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
विरिञ्चिनारायणशंकरात्मने ॥ १ ॥
यस्योदयेनेह जगत्प्रबुध्यते
प्रवर्तते चाखिलकर्मसिद्धये ॥
ब्रह्मेन्द्रनारायणरुद्रवन्दितः
स नः सदा यच्छतु मंगलं रविः ॥ २ ॥

जगत्के मुख्य चक्षु, और जगत्के पालन, पोषण और लयके कारण ऋग्यजुस्सामरूप, तीनों गुणों (सत्त्व-रज-तम) के धारण करनेवाले, ब्रह्मा, विष्णु, महेशात्मक जो श्रीसूर्यदेव हैं उनको नमस्कार है ॥ १ ॥

जिसके उदय होनेमें संसार जगकर सम्पूर्ण कार्यसिद्धि-के लिये प्रवृत्त होता है और ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, महादेव वन्दित जो श्रीसूर्यदेव हैं वह सदा हम लोगोंको मङ्गल दें ॥ २ ॥

संस्कृतम्।

नमोऽस्तु सूर्याय सहस्त्ररश्मये
सहस्त्रशाखान्वितसम्भवात्मने ॥
सहस्त्रयोगोद्भवभावभागिने
सहस्त्रसंख्यायुगधारिणे नमः ॥ ३ ॥
यन्मण्डलं दीप्तिकरं विशालं
रत्नप्रभं तीव्रमनादिरूपम् ॥
दारिद्र्यदुःखक्षयकारणं च
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ४ ॥
यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितं
विप्रैः स्तुतं भावनमुक्तिकोविदम् ॥

भाषा।

अनन्त किरणवाले, तथा सहस्त्रों शाखाओंके प्रकट करनेवाले, अनेक प्रकार कार्योंके करनेवाले, ऐसे जो श्रीसूर्यदेव हैं उनको नमस्कार है ॥ ३ ॥

जिसका मण्डल महान् प्रकाशक और रत्नोंके समान कान्तिवाला, तीक्ष्ण, अनादि तथा दारिद्र्य और दुःखोंका नाश करनेवाला है ऐसे वरणीय श्रीसूर्यदेव हमको पवित्र करैं ॥ ४ ॥

जिसका मण्डल देवगणोंसे पूजित तथा ब्राह्मणों करके प्रार्थनीय, तथा श्रद्धा करके मुक्ति देनेवाला है उस देवदेव

संस्कृतम् ।

तं देवदेवं प्रणमामि सूर्यं
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ५ ॥
यन्मण्डलं ज्ञानघनं त्वगम्यं
त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम् ॥
समस्ततेजोमयदिव्यरूपं
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ६ ॥
यन्मण्डलं गूढमतिप्रबोधं
धर्मस्य वृद्धिं कुरुते जनानाम् ॥
यत्सर्वपापक्षयकारणं च
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ७ ॥

भाषा ।

श्रीसूर्यको प्रणाम करता हूं, वह श्रेष्ठ श्रीसूर्यदेव हमको पवित्र करैं ॥ ५ ॥

जिसका मण्डल ज्ञानमूर्ति, अगम्य तीनों लोकोंसे पूजनीय, त्रिगुणात्मरूप, सम्पूर्ण तेजोमय, तथा अलौकिक रूपवाला है ऐसे वरणीय जो श्रीसूर्यदेव हैं वह हमको पवित्रकरैं ॥६॥

जिसका मण्डल योगियोंके जाननेयोग्य, पुरुषोंमें धर्मकी वृद्धि करनेवाला, तथा सम्पूर्ण पापोंका नाशक है ऐसे वरणीय जो श्रीसूर्यनारायण हैं वह हमको पवित्र करें ॥ ७ ॥

संस्कृतम् ।

यन्मण्डलं व्याधिविनाशदक्षं
यदृग्यजुःसामसु सम्प्रगीतम् ॥
प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ८ ॥
यन्मण्डलं सर्वजनेषु पूजितं
ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके ॥
यत्कालकालादिमनादिरूपं
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ९ ॥
यन्मण्डलं विष्णुचतुर्मुखाख्यं
यदक्षरं पापहरं जनानाम् ॥

भाषा ।

जिसका मण्डल व्याधियोंके नाश करनेमें कुशल, ऋक्, यजु, साम करके गान किया हुआ, तथा भूर्भुवः स्वः का प्रकाशक है ऐसे वरणीय श्रीसूर्यभगवान् हमको पवित्र करैं ॥ ८ ॥

जिसका मण्डल सर्वजनोंसे पूजित, तथा इस मनुष्यलोकका प्रकाशक है और जो अनादिरूप तथा कालका भी आदिकाल है ऐसे श्रेष्ठ सविता भगवान् हमको पवित्र करैं ॥ ९ ॥

जिसका मण्डल विष्णु तथा ब्रह्माकी संज्ञासे प्रख्यात है; जो अविनाशी तथा सर्व प्राणियोंके पापोंका नाश कर-

संस्कृतम् ।

यत्कालकल्पक्षयकारणं च
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १० ॥
यन्मण्डलं विश्वसृजां प्रसिद्ध-
मुत्पत्तिरक्षाप्रलयप्रगल्भम् ॥
यस्मिञ्जगत्संहरतेऽखिलं च ।
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ ११ ॥
यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णो-
रात्मा परं धाम विशुद्धतत्त्वम् ॥
सूक्ष्मान्तरैर्योगपथानुगम्यं
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १२ ॥

भाषा ।

नेवाला है और जो काल तथा कल्पका नाश करनेवाला है ऐसे श्रेष्ठ सूर्यदेव हमको पवित्र करें ॥ १० ॥

जिसका मण्डल सृष्टिकर्ताओंमें प्रसिद्ध, उत्पत्ति, पालन, तथा लयकरमें अतिशक्ति-शाली है और जिसमें सम्पूर्ण संसार लीन होजाते हैं ऐसे श्रेष्ठ श्रीसूर्य भगवान् हमको पवित्र करैं ॥ ११ ॥

जिसका मण्डल सर्वव्यापी विष्णुका स्वरूप है, जो परम धाम और जो सूक्ष्महृदयवालोंसे योगमार्ग करके प्राप्तव्य है ऐसे श्रेष्ठ श्रीसूर्य भगवान् हमको पवित्र करैं॥ १२॥

संस्कृतम् ।

यन्मण्डलं ब्रह्मविदो वदन्ति
गायन्ति यच्चारणसिद्धसंघाः ॥
यन्मण्डलं वेदविदः स्मरन्ति
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १३ ॥
यन्मण्डलं वेदविदोपगीतं
यद्योगिनां योगपथानुगम्यम् ॥
तत्सर्ववेद्यं प्रणमामि सूर्यं
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १४ ॥

भाषा ।

ब्रह्मज्ञानी जिसके मण्डलका कथन करते हैं; चारण तथा सिद्धगण जिसका गान करते हैं और वेद-वेत्ता गण जिसका स्मरण करते हैं ऐसे श्रेष्ठ श्रीसूर्य भगवान् हमको पवित्र करें ॥ १३ ॥

वेदवेत्ताओंने जिस मण्डलका गान किया है और जो योगियोंद्वारा योग पथसे प्राप्य हैं ऐसे सबके जानने योग्य श्रीसूर्यस्वामीको मैं प्रमाण करता हूं । वह श्रेष्ठ श्रीभास्कर भगवान् हमको पवित्र करैं ॥ १४ ॥

इति भाषाटीकासहितो गायत्रीमन्त्रार्थभास्करः समाप्तः ।

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर"स्टीम्–प्रेस
बंबई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर"स्टीम्-प्रेस,
कल्याण–बंबई.



